गोवर्धन ज्योति-पंचम रश्मि

ऋषि
दया
नन्द
कृत

व्यवहार भानु का सरल स्वरूप

संकलन एवं सम्पादन :
जगदीश विद्यालङ्कार

संघड़ विद्या सभा जयपुर की सहायता से
आर्य समाज गुरुकुल कांगड़ी द्वारा प्रकाशित

☐ प्रकाशक :

आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार

प्रधान-आर्यसमाज गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

☐ प्रथम बार :

१००० प्रतियां

फरवरी १९८४ ई० फाल्गुण २०४० विक्रमी सम्वत्

☐ मूल्य :

श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय

☐ मुद्रणालय :

शर्मा प्रिण्टर्स

निकट पंजाब नेशनल बैंक,

ज्वालापुर (हरिद्वार)

गोवर्धन ज्योति प्रकाशन माला के आदि स्रोत

स्व० श्री गोवर्धन शास्त्री (१८८१-१९२७)



मान्यवर स्व० श्री गोवर्धन जी शास्त्री का जन्म सन् १८८१ मे शरीक जिला डेरा गाजीखान (पाकिस्तान) मे एक सम्भ्रान्त परिवार में हुआ था। श्री शास्त्री जी राजकीय कालेज लाहौर मे १९०५ मे स्नातक बने। उस समय के राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रेरित होकर उन्होने १९०५ मे ही अपने आपको स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा सिञ्चित गुरुकुल प्रणाली हेतु समर्पित कर दिया। सन् १९०८ मे १९१४ तक उन्होने गुरुकुल कागडी (गंगा पार) में मुख्याध्यापक का पद सुशोभित किया। श्री शास्त्री का कार्यकाल अत्यन्त अनुशासनप्रिय माना जाता है। श्री शास्त्री जी ने भारतवर्ष में सर्वप्रथम विज्ञान की भौतिक एव रसायन की दो पुस्तकों को हिन्दी भाषा मे प्रस्तुत किया। हिन्दी भाषा मे विज्ञान साहित्य सृजन का यह सर्वप्रथम महान् कार्य था। इसी आधार पर कालान्तर में विज्ञान का हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किये जाने का कार्य प्रारम्भ हुआ।

श्री शास्त्री जी ने सन् १९१८ में एम. ए. उपाधि प्राप्त की तथा १९२२ में एम० ओ० एल० शास्त्री उपाधि से अलंकृत हुए।

श्री शास्त्री जी १९१५ में रामजस हाई स्कूल देहली में मुख्याध्यापक नियुक्त हुए। १९२० में श्री शास्त्री जी ने एंग्लो संस्कृत हाई स्कूल डेरा गाजीखान की स्थापना की यहीं पर वे १९२४ तक मुख्याध्यापक रहे। इसके पश्चात शास्त्री जी १९२५–१९२७ तक आर्यनेता श्री ठाकुरदत्त धवन द्वारा स्थापित वैदिक भ्रातृ कॉलेज डेरा इस्माइल खां में संस्कृत प्राध्यापक पद पर रहे।

सन् १९२७ में ही श्री शास्त्री का डेरा इस्माइल खां में निधन हुआ।

श्री शास्त्री जी एक अदम्य शक्ति के पुरुष थे। एक आदर्श पिता, आदर्श प्राध्यापक तथा एक महान् शिक्षा शास्त्री के रूप में सदैव स्मरण किए जाते रहेंगे। श्री शास्त्री जी के सुयोग्य पुत्र श्री बलभद्र कुमार हूजा, जो कि सदैव अपने पिता जी के चरण चिन्हों पर अनुप्राणित हो गुरुकुल कांगड़ी को एक दशक से अहर्निश तपस्यामय जीवन के साथ शास्त्री जी के गुरुकुल के सम्बन्ध में संजोये गए स्वप्न को सजीव करने में लगे हुए हैं।

उन्हीं के आशीर्वाद से यह रश्मि आप की सेवा में समर्पित है।

डॉ० जयदेव वेदालंकार

मन्त्री आर्यसमाज एवं रीडर, अध्यक्ष दर्शन विभाग

निवेदन

मैं समझता हूँ, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष जगदीश विद्यालङ्कार ने ऋषि दयानन्द की पुस्तक व्यवहार भानु का सरलीकरण करके समाज का बहुत उपकार किया है। प्रश्न उठता है कि आज के संदर्भ में इस पुस्तक की आवश्यकता क्यों ? आज जब सर्वत्र पारिवारिक एवं सामाजिक मर्यादायें टूटती नजर आ रही हैं। राजपुरुषों तथा समाज के नेताओं का आचरण नैतिक एवं धर्म की मर्यादाओं का उलंघन करता दीखता है, आशा इस पुस्तक का बारम्बार अध्ययन लाभदायी होगा।

ऋषि दयानन्द ने आज से सौ वर्ष पूर्व वैदिक आचार मर्यादाओं का दिग्दर्शन कराने हेतु "व्यवहार भानु" नामक लघु ग्रन्थ का सृजन किया था, उस वक्त भी उन्हें इसकी आवश्यकता महसूस हुई होगी, तभी उन्होंने इस समाजोपयोगी विचारधारा को अपने शिष्यों के सम्मुख प्रस्तुत किया, सौ वर्ष पश्चात आज भी इसकी उतनी ही आवश्यकता है।

इसीलिये मैंने जगदीश विद्यालङ्कार को प्रेरित किया कि वह इसके सरल संस्करण को प्रस्तुत करें, संघड़ विद्या ट्रस्ट को प्रेरित किया कि इसके प्रकाशन हेतु आर्थिक अनुदान प्रदान करें, इस आर्थिक अनुदान से आर्यसमाज गुरुकुल कांगड़ी के द्वारा

यह पुस्तिका "गोवर्धन ज्योति" की पंचम रश्मि के रूप में प्रकाशित हो रही है।

आज से नौ वर्ष पहले जब मैं गुरुकुल में आया, मुझे यह जानकर बहुत आघात पहुँचा कि यहां के प्रोफेसर ओमप्रकाश सिन्हा की इसलिये हत्या की गई थी कि उन्होंने परीक्षा में छात्रों को नकल करने से रोका था, जब मुझे यह ज्ञात हुआ, मै दो दिन खाना नहीं खा सका।

मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि कुछ ही दिनों पूर्व आयुर्वेद कॉलेज के विद्यार्थियों ने फार्मेसी के अध्यक्ष को गधे की सवारी करवाई थी तथा उनका निरादर किया था।

इसी तरह अप्रैल १९७६ में जब गुरुकुल को नये वेतनमान प्राप्ति हुए तथा कर्मचारियों को नये वेतनमान में स्थिर किया जाने लगा, कुछ कर्मचारियों ने तत्कालीन वित नियन्ता श्री बोहरा पर शारीरिक प्रहार किया, पुलिस उस मामले में दखल करने को आई। मैंने पुलिस को यह कहकर कि यह हमारा घरेलु मामला है, लौटा दिया तथा ७६ घण्टे का उपवास किया।

इसके पश्चात् गुरकुल में जो घटनायें घटी उनसे विक्षुब्ध होकर मैंने सितम्बर ७६ में अपना त्यागपत्र दिया जिसे डॉ० दुःखनराम विजिटर महोदय ने स्वीकार नहीं किया।

मई १९७७ में फिर आयुर्वेद कॉलेज के प्राध्यापकों को वेतन न मिलने पर फार्मेसी के द्वार पर छात्रों एवं प्राध्यापकों

ने अनशन किया। इस वक्त उन्होंने आयुर्वेद कॉलेज के सरकारीकरण की मांग की। मुझे तत्कालीन सभा प्रधान ने यह सन्देश देकर भेजा कि उनकी मांग स्वीकर कर ली जायेगी। वे अपना आन्दोलन समाप्त कर लें, चूंकि वे अविलम्ब अनुबन्ध चाहते थे इसलिये उन्होंने मुझको तथा दिल्ली सभा के प्रधान सरदारी लाल को घेराव में ले लिया तथा रात को बहुत देर के पश्चात स्थानीय अधिकारियों के बीच मैं पड़ने पर मुक्त किया।

दो दिन पश्चात उन्होने पुनः हमें तथा श्री धर्मवीर विद्यालङ्कार सहायक मुख्याधिष्ठाता को घेर लिया और हमारे मुख पर कालिख लगाने की कोशिश की।

१५म ई१९७७ को आर्य प्रनिनिधि सभा पंजाब ने विद्यार्थियों के निर्देशानुसार आयूर्वेद कांलेज के सरकारी कारण की स्वीकृति दी। तब कहीं जाकर आन्दोलन समाप्त हुआ।

अगस्त १९७७ में पुनः इसी प्रकार गुरुकुल के अध्यापकों ने मर्यादाये भग की तथा विद्यालय के छात्रों को भी अपने कलह द्वेष में शामिल करने की कोशिश की। इसके पश्चात ३ वर्ष तक जो यातनायें उनको भोगनी पड़ी उनको स्मरण न करना ही श्रेयस्कर है।

आखिर २ जुलाई को डिस्टिक जज सहारनपुर के निर्णय के पश्चात बादल छटे तथा गुरुकुल में नये युग का समारम्भ हुआ।

इन्ही दिनों मुझे ऋषि दयानन्द कृत व्यवहारभानु को दुबारापढ़ने का मौका मिला, सोचा कि यदि इसे अन्य लोग भी पढ़े तथा इसके अनुसार अमल करने की कोशिश करे तो गुरुकुल कावातावरण बदल सकता है। इसी आशय को लेकर मैंने दो चार अध्यापकों से पूछा कि क्या उन्होंने व्यवहार भानु पढा है ? जब सभी ने व्यवहार भानु से अनभिज्ञता प्रकट की तो मुझे बहुत दुःख हुआ और मैंने एक चुटकला लिया, क्या वे व्यवहार भानु को जानते हैं ? कहने लगे, "चन्द्रभानु मेरे साथ पढते थे, सूर्यभानु मेरे से एक वर्ग आगे थे, व्यवहारभामु को मुझे "स्मरण नही आता" तभी मैंने निश्चय किया, व्यवहार भानु का सरल संस्करण प्रकाशित कराया जाये तथा सभी अध्यापकों तथा विद्यार्थियों में इसको वितरण किया जाये।

सरलीकरण इसलिये किया गया है कि जिन लोगों को संस्कृत नहीं आती वे संस्कृत के लालित्य अथवा दुरुहता में नहीं फंसना चाहेंगे। अभिप्राय तो ऋषि दयानन्द द्वारा दिग्दर्शित वैदिक आचरण संहिता के मूल तत्वों को सहज बुद्धि गम्य रूप से प्रचारित करने का है। जिससे सामान्यजन राजा-प्रजा, पिता पुत्र, गुरु-शिष्य का व्यवहार कैसा होना चाहिये यह जानकर वे उस प्रकार का व्यवहार करने का प्रयत्न कर सकें।

इस पुस्तक में बुद्धिमान् एवं मूर्ख के क्या लक्षण हैं ? शिक्षा प्राप्ति के क्या साधन है ? विद्वान् एवं अविद्वान में क्या

भेद है ? आदि बातों का भी सुन्दर विश्लेषण किया गया हैं।

आशा है यही पुस्तक न केवल गुरुकुल के लिए प्रेरणादायक सिद्ध होगी किन्तु अन्यत्र भी इसकी उतनी आवश्यकता है जितनी गुरुकुल में है क्योंकि आज तो हर विद्यालय में गुरु-शिष्य मर्यादायें खण्डित हो रही है जहां तप, स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य का यज्ञ होना चाहिये, वहां घेराव, गाली-गलोज, छुरेबाली प्रदर्शन हो रहा है। आवश्यकता इस बात की भी है कि इस पुस्तक का अंग्रेजी व अन्य भाषाओं में अनुवाद हो जिससे कि हिन्दी न जानने वाले प्रदेशों में भी इसका प्रचार हो सके।

इन शब्दों के साथ इस पुस्तक को गुरुकुल के गुरुजन एंव विद्यार्थियों को सादर समर्पित करते हैं।

७.२.८४
बंसत पंचमी
गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय
हरिद्वार।

बलभद्र कुमार हूजा
कुलपति

□□□

गोवर्धन ज्योति

पञ्चम रश्मि

महर्षि दयानन्दकृत व्यवहारभानु का

सरलस्वरुप

ऐसा किस मनुष्य का आत्मा होगा कि जो सुखो को सिद्ध करनेवाले व्यवहारों को छोड़ कर उलटे आचरण करने में प्रसन्न हो? क्या यथारोग्य व्यवहार किये विना किसी को सर्व सुख हो सकता है? क्या मनुष्य अच्छी शिक्षा से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष फलों को सिद्ध नही कर सकता और इसके बिना पशु के समान होकर दुःखी नही रहता हैं जिसलिए सब मनुष्यों को सुशिक्षा से युक्त होना आवश्यक है इसलिये यहां वालक से लेकर वृयोद्धपर्यन्न मनुष्यों के सुधार के अर्थ व्यवहार सम्बन्धी शिक्षा का विधान किया जाता है।

प्रश्न–कैसे पुरुष पढ़ाने और शिक्षा करने हारे होने चाहिये?

उत्तर–जिसको परमात्मा और जीवात्मा का यथार्थ ज्ञान, जो आलस्य को छोड़कर सदा निरोगी, सुखदुःखादि का सहन

धर्म का नित्य सेवन करने वाला हो, जिसको कोई पदार्थ धर्म से छुड़ा अधर्म की ओर खींच सके वह पण्डित कहता है।

जो मनुष्य प्राप्त होने के अयोग्य पदार्थों की कभी इच्छा नहीं करते अदृष्ट वा किसी पदार्थ के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने पर शोक करने की अभिलाषा नहीं करते और बड़े-बड़े दुःखों से युक्त व्यवहारों की प्राप्ति में भी मूढ़ होकर नही घबराते, वे मनुष्य पण्डितों की बुद्धि से युक्त कहाते हैं।

जिस की वाणी सब विद्याओं में चलने वाली, अत्यन्त अद्भुत विद्याओं की कथाओं को करने, बिना जाने पदार्थो तर्क से शीघ्र जानने, सुनी विचारी विद्याओं को सदा उपस्थित रखने और जो सब विद्याओं के ग्रन्थों को अन्य मनुष्यों को शीघ्र पढ़ाने वाला मनुष्य है, वही पण्डित है।

प्रश्न-कैसे मनुष्य पढ़ाने और उपदेश करने वाले न होने चाहिए।

उत्तर-जो किसी विद्या को न पढ़ और किसी विद्वान का उपदेश न सुनकर बड़ा घमड़ी, दरिद्र होकर धन सम्बन्धी बड़े-२ कामों की इच्छा वाला और बिना किये बड़े-२ फलों की इच्छा करके वाला है।

दृष्टान्तः—जैसे-एक दरिद्र शेखचिल्ली नामक व्यक्ति किसी ग्राम में था। वहां किसी नगर का बनिया दश रु० उधार लेकर घी लेने आया था। वह घी ले कर घड़े में भर किसी

मजदूर को खोज में था। वहां शेखचिल्ली आ निकला। उससे पूछा कि इस घड़े को तीन कोस पर ले जाने की क्या मजूरी लेगा। उसने कहा कि आठ आने। आगे बनिये ने कहा कि चार आने लेता हो तो ले। उसने कहा, अच्छा, शेखचिल्ली घड़ा ले चला और बनिया पीछे-पीछे चलता हुआ मन में मनोरथ करने लगा कि दष रुपयों के घी के ग्यारह रुपये आवेंगे। दश रुपय सेठ को दुंगा और एक रुपया घर कीपूंजी रहेगी। वैसे ही दशफेरे में दश रुपये हो जायगे। इसी प्रकार दश से सौ, सौ से सहस्र, सहस्र से लक्ष, लक्ष से करोड। फिर सब जगह कोठियां करूंगा और सब राजा लोग मेरे कर्जदार हो जायगें, इत्यादि। बड़े-बड़े मनोरथ करने लगा और शेखचिल्ली ने विचारा कि चार आने की रुई ले सूत कात कर बेचूँगा। आठ आने मिलेंगे। फिर आठ आने से एक रुपया हो जायेगा। फिर वैसे ही एक से दो रुपये होंगे। उनसे एक बकरी लूंगा। जब उसके कच्चे बच्चे होगें तब उन को बेच कर एक गाय लूंगा। उसके बच्चे बच्चे बेच भैंस लूंगा। उस के कच्चे बच्चे बेच एक घोड़ी लूंगा। उसके कच्चे बच्चे बेच एक हथिनी लूंगा और उसके कच्चे बच्चे बेच दो बीबियां ब्याहूँगा एक का नाम प्यारी और दूसरी का का नाम बेप्यारी रखूंगा। जब प्यारी लड़के गोद में बैठने आयेगें तब कहूगा, बच्चे आओ बैठो और जब बेप्यारी के लड़के आकर कहेगे कि हम भी बैठेंगे, तब कहूँगा, नहीं नहीं ऐसा कहकर सिर हिला दिया। घडा गिर पड़ा। फूट गाया। और घी भूमि पर

फैल के धूलि में मिल गया, बनिया रोने लगा और शेखचिल्ली भी रोने लगा। बनिया ने शेखचिल्ली को धमकाया कि घी क्यों गिरा दिया और रोता क्यों है? तेरा क्या नुकसान हुआ? (शेखचिल्ली) तेरा क्या बिगाड़ हुआ? तू क्यों रोता है? (बनिया) मैंने १० रु० उधार लेकर प्रथम ही घी खरीदा था। उस पर बड़े-बड़े लाभ का विचार किया था। वह मेरा सब बिगड़ा। मैं क्यों न रोऊं? (शेखचिल्ली) तेरी तो १० रु० आदि की ही हानि हुई मेरा तो घर ही बना बनाया बिगड़ गाया। मैं क्यों न रोऊं? (बनिया) क्या तेरे रोने से मेरा घी आ जायेगा? (शेखचिल्ली) अच्छा तो तेरे रोने से मेरा घर भी न बन जायेगा। तू बड़ा मूर्ख है। (बनिया) तू मूर्ख, तेरा बाप। दोनों आपस में एक दूसरे को मारने लगे और फिर मार पीट कर शेखचिल्ली अपनी घर की ओर भाग गया। और उस बनिये ने धूलि मिले हुए घी को ठीकरे में उठाकर अपने घर की राह ली। ऐसे ऐसे स्वसामर्थ्य के बिना अशक्य मनोरथ किया करना मूर्खों का काम है और जो बिना परिश्रम के पदार्थों की प्राप्ति में उत्साही होता है उसी मनुष्य को विद्वान लोग मूर्ख कहते।

जो बिन बुलाये जहां तहां सभी आदि स्थानों में प्रवेश कर सत्कार और उच्च आसन को चाहे वा ऐसी रीति में बैठे के सत्पुरुषों को उसका आचरण अप्रिय विदित हो, बिना पूछे बहुत अंड-बंड बके, अविश्वासियों में विश्वासी होकर सुख की हानि कर लेवें वहीं मनुष्य बुद्धिमान् और मनुष्यों में नीच कहलाता है।

जो विद्या पढ़े और पढ़ावे वे निम्नलिखित दोषयुक्त नहीं।

आलस्य, अभिमान, नशा करना, चपलता, व्यर्थ इधर उधर की अंड बंड की बातें करना, जड़ता, कभी पढ़ना कभी न पढ़ना, अभिमान और लोभ लालच ये सात विद्यार्थियों के लिये विद्या के विरोधी दोष हैं क्योंकि जिस को सुख चैन करने की इच्छा है उसकी विद्या कहां और जिसका चित्त विद्या ग्रहण करने कराने में लगा है उसको विषय सम्बन्धी सुख चैन कहां ? इसलिये विषय सुखार्थी विद्या को छोड़े और विद्यार्थी विषय सुख से अवश्य अलग रहे नहीं तो परम धर्म रूप विद्या का पढ़ना पढ़ाना कभी नहीं हो सकेगा।

प्रश्न—कैसे-कैसे मनुष्य सब विद्याओं की प्राप्ति कर और करा सकते हैं ?

उत्तर—जो मनुष्य इस संसार में जन्म से लेके मरण पर्यन्त ब्रह्मचारी होता है उसको कोई शुभ गुण अप्राप्त नहीं रहता। ऐसा तू जान कि जिसके प्रताप से अनेक क्रोड़ ऋषि ब्रह्मलोक अर्थात् सर्वानन्द स्वरूप परमात्मा में वास करते और इस लोक में भी अनेक सुखों से प्राप्त होते हैं। जो निरन्तर सत्य में रमण, जितेन्द्रिय, शान्तात्मा, उत्कृष्ट शुभ गुण स्वभाव युक्त और रोग रहित पराक्रम सहित ब्रह्मचर्य अर्थात् वेदादि-सत्य शास्त्र और परमात्मा की उपासना का अभ्यास कर्मादि करते हैं, उनके वे सब उत्तम गुण बुरे काम और दुखों को नष्ट कर सर्वोत्तम धर्मयुक्त कर्म और सब सुखों की प्राप्ति कराने हारे

होते हैं, और इन्हीं के सेवन से मनुष्य उत्तम अध्यापक और उत्तम विद्यार्थी हो सकते हैं।

प्रश्न—शूरवीर किन को कहते है ?

उत्तर—जो मनुष्य वेदादि शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने में शूरवीर, जो दुष्टों के दलन और श्रेष्ठों के पालन में शूरवीर अर्थात् दृढोत्साही उद्योगी, जो निष्कपट परोपकारक अध्यापकों की सेवा करके शूरवीर, जो अपने जनक (पिता) की सेवा करके शूरवीर, जो माता की परिचर्या से शूर, जो संन्यासाश्रम से युक्त अतिथिरूप होकर सर्वत्र भ्रमण करके परोपकार करने में शूर जो वानप्रस्थाश्रम के कर्म और जो गृहाश्रम के व्यवहार में शूर होते हैं वे ही सब सुखों के लाभ करने कराने में अत्युत्तम होके धन्यवाद के पात्र हैं कि जो अपना तन मन धन विद्या और धर्मादि शुभ गुण ग्रहण करने में सदा उद्यत रहते हैं।

प्रश्न—शिक्षा किस को कहते हैं ?

उत्तर—जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्यादि दोषों को छोड़ के सदा आनन्दित हो सके वह शिक्षा कहाती है।

प्रश्न—विद्या और अविद्या किस को कहते हैं ?

उत्तर—जिससे पदार्थ का स्वरूप यथावत जानकर उससे उपकार ले के अपने और दूसरों के लिये सब सुखों को सिद्ध कर सके वह विद्या और जिससे पदार्थों के स्वरूप को उलटा जान

कर अपना और पराया अनुपकार कर लेवें वह अविद्या कहाती है ।

प्रश्न—मनुष्यों को विद्या की प्राप्ति और अविद्या के नाश के लिये क्या कर्म करना चाहिये ?

उत्तर—वर्णोच्चारण से लेकर वेदार्थज्ञान के लिये ब्रह्मचर्य आदि कर्म करना योग्य है ।

प्रश्न—ब्रह्मचारी किस को कहते हैं ?

उत्तर—जो जितेन्द्रिय होके ब्रह्म अर्थात् वेद विद्या के लिये तथा आचार्य कुल में जाकर विद्या ग्रहण करने के लिये प्रयत्न करे वह ब्रह्मचारी कहाता है ।

प्रश्न—आचार्य किस को कहते हैं ?

उत्तर—जो विद्यार्थियों को अत्यन्त प्रेम से धर्मयुक्त व्यवहार की शिक्षापूर्वक विद्या होने के लिये तन मन और धन से प्रयत्न करे उसको आचार्य कहते हैं ।

प्रश्न—अपने सन्तानों के लिये माता-पिता और आचार्य क्या-क्या शिक्षा करे ?

उत्तर—अहो भाग्य उस मनुष्य का है कि जिस का जन्म धार्मिक विद्वान माता-पिता और आचार्य के सम्बन्ध में हो क्योंकि इन तीनों ही की शिक्षा से मनुष्य उत्तम होता है । ये अपने सन्तान और विद्यार्थियों को अच्छी भाषा बोलने, खाने-

पीने, उठने-बैठने, वस्त्र धारण करने, माता-पिता आदि के मान्य करने, उनके सामने यथेष्टाचारी न होने, विरुद्ध चेष्टा न करने आदि के लिये प्रयत्न से नित्यप्रति उपदेश किया करें और जैसा-जैसा उसका सामर्थ्य बढ़ता जाय वैसी-वैसी उत्तम-उत्तम बातें सिखलाते जाएं। इसी प्रकार लड़के और लड़कियों को पांच व आठ वर्ष की अवस्था पर्यन्त माता-पिता और इसके उपरान्त आचार्य की शिक्षा होनी चाहिये।

प्र०—क्या जैसी चाहें वैसी शिक्षा करें ?

उ०—नहीं, जो अपने पुत्र पुत्री और विद्यार्थियों को सुनावें कि सुन मेरे बेटे बेटियां और विद्यार्थी ! तेरा शीघ्र विवाह करेंगे। तू इसकी डाढ़ी मूंछ पकड़ ले, इसकी जटा के ओढ़नी फेंकदे, धौल मार, गाली दे, इसका कपड़ा छीन ले, पगड़ी वा टोपी फेंकदे, खेल, कूद, हंस, रो, तुम्हारे विवाह में फुलवारी निकालेंगे इत्यादि कुशिक्षा करते हैं उनको माता पिता और आचार्य न समझना चाहिये किन्तु सन्तान और शिष्यों के पक्के शत्रु और दुःखदायक है क्योंकि जो बुरी चेष्टा देखकर लड़कों को न घुडकते और व दण्ड देते हैं वे क्यों कर माता पिता और आचार्य हो सकते हैं ? क्योंकि जो अपने सामने यथातथा बकने निर्लज्ज होने, व्यर्थ चेष्टा करने आदि बुरे कर्मों से हटा कर विद्या, आदि शुभगुणों के लिये उपदेश नहीं करते न तन, मन, धन लग के उत्तम विद्या व्यवहार का सेवन कराकर अपने सन्तानों का सदा श्रेष्ठ करते जाते हैं। वे माता पिता और आचार्य कहाकर

धन्यवाद के पात्र कभी नहीं हो सकते और जो अपने-अपने सन्तान और शिष्यों को ईश्वर की उपासना, धर्म, अधर्म प्रमाण, प्रमेय, सत्य मिथ्या, पाखण्ड, वेद शास्त्र आदि के लक्षण और उनके स्वरूप का यथावत् बोध करा और सामर्थ्य के अनुकूल उनको वेद शास्त्रों के वचन भी कण्ठस्थ कराकर विद्या पढ़ने, आचार्य से अनुकूल रहने की रीति जना देवें कि जिससे विद्या प्राप्नि, आदि प्रयोजन निर्विघ्न सिद्ध हों वे ही माता पिता और आचार्य कहाते हैं।

प्र०–विद्या किस-किस प्रकार और किन कर्मो से होती है ?

उ०–विद्या चार प्रकार से आती है—आगम, स्वाध्याय, प्रवचन और व्यवहार का आगम काल उसको कहते हैं कि जिससे मनुष्य पढ़ाने वाले से सावधान होकर ध्यान देके विद्यादि पदार्थ ग्रहण कर सकें। स्वाध्याय काल उसको कहते हैं कि जो पठन समय में आचार्य के मुख से शब्द अर्थ और सम्बन्धों की बातें प्रकाशित हों उनको एकान्त में स्वस्थचित हो कर पूर्वापर विचार के ठीक-ठीक हृदय में दृढ़ कर सकें। प्रवचन काल उस को कहते हैं कि जब अपने आत्मा में सत्यविद्या होनी है। तब यह करना यह न करना वही ठीक-ठीक सिद्ध हो के वैसा ही आचरण करना हो सके, ये चार प्रयोजन हैं तथा अन्य भी चार कर्म विद्या प्राप्ति के लिये। श्रवन, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार। श्रवण उसको कहते हैं। कि आत्मा मन इन्द्रिय के साथ यथावत् युक्त करके अध्यापक के मुख से जो जो अर्थ और

संबंध के प्रकाश करने हारे शब्द निकलें उनको श्रोत्र से मन और मन से आत्मा एकत्र करते जाना। मनन उसको कहते हैं कि जो जो शब्द अर्थ और संबंध आत्मा ने एकत्र हुए हैं उनका एकान्त में स्वस्थचित होकर विचार करना कि कौन शब्द किस अर्थ के साथ और कोन अर्थ किस शब्द के साथ सम्बन्ध अर्थात् मेल रखता और इनके मेल में किस प्रयोजन की सिद्धि और उलटे होने में क्या-क्या हानि होती, इत्यादि। निदिध्यासन उसको कहते हैं कि जो जो अर्थ और सम्बन्ध सुने विचारे हैं वे ठीक-ठीक हैं वा नहीं इस बात की विशेष परीक्षा करके दृढ़ निश्चय करना और साक्षात्कार उसको कहते हैं कि जो जिन अर्थों के शब्द और सम्बन्ध सुने विचारे और निश्चय किये हैं उनको यथावत् ज्ञान और क्रिया से प्रत्यक्ष करके व्यवहारों की सिद्धि से अपना और पराया उपकार करना, आदि विद्या की प्राप्ति के साधन हैं।

प्र०—आचार्य के साथ विद्यार्थी कैसा कैसा बर्ताव करें और कैसा कैसा न करें ?

उ०—मिथ्या को छोड़ के सत्य बोलें, सरल रहें, अभिमान न करें आज्ञा पालन करें, स्तुति करें, निन्दा न करें, नीचे आसन पर बैठे ऊंचे न बैठे, शान्त रहे चपलता न करें, जब कुछ वे पूछे तो हाथ जोड़ के नम्र होकर उत्तर देवें, घमण्ड से न बोलें, जब वे शिक्षा करें, चित्त देकर सुनें, ठट्ठे में न उड़ावे, शरीर और वस्त्र शुद्ध रखें, मैले कभी न रखें, जो कुछ प्रतिज्ञा करें, उसको पूरी

करें, जितेन्द्रिय होवें, लम्पट, व्यभिचार कभी न करें, अपमान कभी न करें, उपकार मान के कृतज्ञ होवें, किसी के अनुपकारी होकर कृतघ्न न होवें, पुरुषार्थी रहें। आलसी कभी न हों, जिस जिस जिस कर्म से विद्या प्राप्ति हो उस उस को करते जायें, जो जो बुरे काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक आदि विद्या विरोधी हों उनको छोड़ कर सदा उत्तम गुणों की कामना करें, बुरे कामों पर क्रोध, विद्याग्रहण में लोभ, सज्जनों में मोह, बुरे कामों से भय, अच्छे काम न होने मे शोक करके विद्यादि शुभ गुणों से आत्मा और वीर्य आदि धातुओं की रक्षा से जितेन्द्रिय हो शरीर का बल बढ़ाते जायें।

प्र०—आचार्य विद्यार्थियों के साथ कैसे बर्ते ?

उ०—जिस प्रकार से विद्यार्थी विद्वान सुशील निरभिमानी, सत्य-वादी धर्मात्मा आस्तिक, निरालस्य, उद्योगी, परोपकारी, वीर, धीर, गम्भीर, पवित्राचरण, शान्तियुक्त, दमनशील, जितेन्द्रिय, ऋजु, प्रसन्नवदन होकर माता पिता आचार्य, अतिथि, बन्धु मित्र, राजा प्रजा आदि के प्रियकारी हों, जब किसी से बात चीत करें तब जो जो उसके मुख के अक्षर पद वाक्य निकलें उनको शान्त होकर सुनके प्रत्युत्तर देवें, जब कभी कोई बुरी चेष्टा, मलिनता, मैले वस्त्र धारण, बैठने, विपरीताचरण, निन्दा, ईर्ष्या द्रोह, विवाद लड़ाई, बखेड़ा चुगली, किसी पर मिथ्या दोष लगाना, चोरी, जारी, अनभ्यास, आलस्य, अतिनिद्रा, अतिभो-जन, अतिजागरण, व्यर्थ खेलना, इधर उधर अट्ट-सट्ट मारना,

विषय सेवन, बुरे, व्यवहारों की कथा करना ब सुनना, दुष्टों के सग बैठना आदि दुष्ट व्यवहार करे तो उसको यथा अपराध कठिन दण्ड देवें। इसमे प्रमाण :—

आचार्य लोग अपने विद्यार्थियों को विद्या और सुशिक्षा होने के लिये प्रेमभाव से अपने हाथों से ताडना करते हैं क्योंकि सन्तान और विद्यार्थियों का जितना लाडन करना है उतना ही उनके लिये बिगाड और जितनी ताड़ना करनी है उतना उनके लिये सुधार है। परन्तु ऐसी ताडना न करे कि लिससे अंगभंग व मर्म मे लगने से विद्यार्थी व लड़के लड़की लोग व्यथा को प्राप्त हो जाये।

हुडदंग उवाच, हुडदंग कहता है कि जो पढता है वह भी मरता और जो नही पढता वह भी मरता है। फिर पढ़ने पढ़ाने मे दात कटाकट क्यों करना ?

सज्जन उवाच, सज्जन कहता है कि सुन भाई हुडदंग ! जो तू जनता है सो विद्या का फल नही कि विद्या के पढने से जन्म मरन, आंख से देखना, कान से सुनना आदि ये ईश्वरीय नियम अन्यथा हो जाये किन्तु विद्या के यथार्थ ज्ञान होकर यथा-योग्य व्यवहार करने कराने से आप और दूसरों को आनन्द युक्त करना विद्या का फल है। क्योंकि बिना विद्या के किसी मनुष्य को निश्चय सुख नहीं हो सकता। क्या भय से किसी-किसी को क्षण भर सुख हुआ, न हुआ सा है किसी का सामर्थ्य नहीं है कि

जो अविद्वान होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के स्वरूप को यथावत् जानकर सिद्ध कर सकें। इस लिये सबको उचित है कि इनकी सिद्धि के लिये विद्या का अभ्यास तन, मन, धम से किया और कराया करें। हुडदगा, हम देखते हैं कि बहुत से मनुष्य विद्या पढ़ते हुए दरिद्र और भीख मागते तथा बिना पढे हुए राज्य धन का आनन्द भोगते है, सज्जन, सुनो प्रिय ! सुख दुःख का योग आत्मा में हुआ करता है जहां विद्या रूप सूर्य का अभाव और अविद्यान्धकार का भाव है वहां दुःखों की तो भरमार, सुख की क्या कथा कहना है ? और विद्यार्क प्रकाशित होकर अविद्यान्धकार को नष्ट कर देता है उस आत्मा में सदा आनन्द का योग और दुःख को ठिकाना भी नही मिलता है।

प्र०—आचार्य किस रीति से विद्या और सुशिक्षा का ग्रहण करावें और विद्यार्थी लोग करें ?

उ०—दृष्टान्त हस्तक्रिया, यंत्र, कलाकौशल विचार आदि से विद्यार्थियों के आत्मा में पदार्थ इस प्रकार साक्षात करावे कि एक के जानने से हजारों पदार्थ यथावतजानते जायें। अपने आत्मा में इस बात का ध्यान रखे कि जिस प्रकार से संसार मे विद्या धर्माचरण की बढ़ती और मेरे पढ़ाये मनुष्य अविद्वान और कुशिक्षित होकर मेरी निन्दा के कारण न हो जायें कि मै ही विद्या के रोकने और अविद्या की वृद्धि का निमित न गिना जाऊं, ऐसा न हो कि सर्वोत्तम परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव से मेरे गुण कर्म स्वभाव विरुद्ध होने से मुझको महादुःख भोगन

हो। परमधन्य वे मनुष्य है कि जो अपने आत्मा के समान सुख में सुख और दुःख में दुःख अन्य मनुष्यों का जानकर धार्मिकता को कदापि नही छोडते, इत्यादि उत्तम व्यवहार आचार्य लोग नित्य करते जायं। विद्यार्थी लोग भी जिन कर्मो से आचार्य की प्रसन्नता होती जाये वैसे कर्म करे जिससे उसका आत्मा सन्तुष्ट होकर चाहे कि ये लोग विद्या से युक्त होकर सदा प्रसन्न रहें। रात दिन विद्या ही के विचार में लगा कर एक दूसरे के साथ प्रेम से परस्पर विद्या को पढाते जावें।

जो बुद्धि के नाश करने हारे नशा के पदार्थ हों उनको ग्रहण कभी न करे किन्तु जो जो ज्ञान बढ़ाने और रोग नाश करने हारे पदार्थ हों उन्हीं का सेवन सदा किया करें।

प्र०—सत्य और असत्य का निश्चय किस प्रकार से होता है क्योंकि जिसको एक सत्य कहता है, दूसरा उसी को मिथ्या बतलाता है उसका निर्णय करने में क्या-क्या निश्चिय साधन हैं ?

उ०—पांच हैं, उनमें प्रथम ईश्वर के गुण, कर्म स्वभाव और वेदविद्या, दूसरा सृष्टिक्रम, तीसरा प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, चौथा आप्तों का आचार, उपदेश, ग्रन्थ और सिद्धांत और पांचवां अपने आत्मा की साक्षी, अनुकूलता, जिज्ञासुता, पवित्रता और विज्ञान। ईश्वरादि से परीक्षा करना उसको कहते हैं कि जो जो ईश्वर के न्याय आदि गुण पक्षपातरहित सृष्टि बनाने

क्रम और सत्य न्याय , दयालुता, परोपकारता, आदि स्वभाव और वेदोपदेश से सत्य और धर्म ठहरे वहीं सत्य, धर्म, और जो जो असत्य और अधर्म ठहरे वहीं असत्य और अधर्म है।

जैसे कोई कहे कि बिना मा बाप के लड़का, कान से देखना, आंख से बोलना, आदि होता व हुआ है ऐसी ऐसी बातें सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से मिथ्या और माता पिता से सन्तान कान से सुनना और आंख से देखना आदि सृष्टिक्रम के अनुकूल होने से सत्य ही हैं। तीसरा प्रत्यक्ष आदि आठ प्रमाणों से परीक्षा करना उसको कहते हैं कि जो जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से ठीक-ठीक ठहरे वह सत्य और जो जो विरुद्ध ठहरे वह मिथ्या समझना चाहिए। जैसे किसी न किसी से कहा कि यह क्या है? दूसरे ने कहा कि पृथ्वी, यह प्रत्यक्ष है इस को देखकर इसके कारण का निश्चय करना। अनुमान, जैसे बिना बनाने हारे के घर नहीं बन सकता वैसे ही सृष्टि का बनाने हारा ईश्वर भी बड़ा कारीगर है। आप्तों के आचार और सिद्धान्त से परीक्षा करना उसको कहते हैं कि जो जो सत्यवादी, सत्यकारी, सत्य-मानी, पक्षपात रहित सबके हितैषी विद्वान् सबके सुख के लिये प्रयत्न करें वे धार्मिक लोग आप्त कहाते हैं। उनके उपदेश आचार, ग्रंथ और सिद्धान्त से जो युक्त हो वह सत्य और जो विपरीत हो वह मिथ्या है। आत्मा से परीक्षा उसको कहते हैं कि जो जो अपना आत्मा अपने लिये चाहे सो सो सब के लिये चाहना और जो जो न चाहे सो सो किसी के लिये न चाहना

जैसा आत्मा में वैसा मन में, जैसा मन में, वैसा क्रिया में होने को जानकी ने इच्छा, शुद्ध भाव और विद्या के नेत्र से देख कर सत्य और असत्य का निश्चय करना चाहिये इन पांच प्रकार की परीक्षाओं से पढ़ने, पढ़ाने हारे तथा सत्याऽसत्य का निर्णय करके धर्म का ग्रहण और अधर्म का परित्याग करें और करायें।

प्र०—धर्म और अधर्म किस को कहते है ?

उ०—जो पक्षपात रहित न्याय, सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग पांचों परिक्षाओं के अनुकूल आचरण, ईश्वराज्ञा पालन परोपकार करना, रुप धर्म, जो इससे विपीत वह अधर्म कहाता है. देखो किसी ने किसी से पूछा कि सत्य क्या है ? उसको उसने उत्तर दिया जो में मानता हुं. फिर उसने पूछा और जो वह मानता है वो जो में मानता हुं वह क्या है उसने कहा अधर्म है यही पक्षपात से की मिथ्या ओर विरुद्धाचार अधम और जब तीसरे ने दोनों से पूछा कि सत्य बोलना धर्म अथवा असत्य तब दोनों ने उत्तर दिया कि सत्य बोलना धर्म और असत्य बोलना अधर्म हैं। इसी का नाम धर्म जानों। परन्तु यहां पांच परीक्षा की युक्ति से सत्य और असत्य का निश्चय करना योग्य है।

प्र०—जब जब सभा आदि व्यवहारों में जावें तब तब कैसे कैसे वर्ते ?

उ०—जब सभा में जावें तब दृढ़ निश्चय कर लेवें कि मैं सत्य को जिताऊं और असत्य को हराऊंगा। अभिमान न रखें अपने को बड़ा न माने। अपनी बात का कोई खंडन करें उस

पर क्रुद्ध वा अप्रसन्न न हो। जो कोई कहे उसके वचन को ध्यान देकर सुन के जो उस में कुछ असत्य भान हो उस अंश का खंडन अवश्य करें और जो सत्य हो तो प्रसन्ननापूर्वक ग्रहण करें, बडाई छोटाई न गिने, व्यर्थ बकवाद न करें, कभी मिथ्या का पक्ष न करें और सत्य को कदापि न छोटे। ऐसी रीति से बैठे वा उठे कि जिससे किसी को बुरा विदित न हो, सर्वहित पर दृष्टि रखे, जिससे सत्य की बढ़ती और असत्य का नाश हो उसको करे, सज्जनों का संग करें और दुष्टों से अलग रहे जो जो प्रतिभा करे वह वह सत्य से विरुद्ध न हो और उसको सर्वदा यथावत् पूरी करें, इत्यादि कर्म सब सभा आदि व्यवहारों में करें।

प्र०—जड़ बुद्धि और तीव्र बुद्धि किस को कहते हैं ?

उ०—जो आप तो समझ ही न सके परन्तु दूसरे के समझाने से भी न समझे वह जड़—बुद्धि और जो समझाने मे झटपट समझें और थोड़े ही समझने से बहुत समज जावे वह तीव्र बुद्धि कहाता हैं। यहां महाजड़ और विद्वान का दृष्टान्त सुनो। कहीं एक रामदास वैरागी का चेला भूपालदास पाठ करता करता कुएं पर पानी भरने को गया, वहां एक पंडित बैठा था उसने अशुद्ध पाठ सुनकर कहा, कि तू "श्री गणेशाय नमः" ऐसा घोकता है सो शुद्ध नहीं है, किन्तु "श्री गणेसाय नमः" ऐसा शुद्ध पाठ कर, तब वह बोला कि मेरे महन्त जी बडे पण्डित है उन्होंने जैसा मुझको बताया है वैसा ही घोखूंगा। उसने पानी

भग्कर अपने गुरु के पास जा के कहा कि महाराज जी एक बम्मन मेरे पाठ को अशुद्ध बतलाता है, नब खाकीजी ने चेलों से कहा उस बम्मन को यहां बुलवाओ, वह गुरु का फटकारा मेरे चेले को क्यों बहकाता और शुद्ध का अशुद्ध क्यों बतलाता है ? चेला गया, पण्डित जी को बुलवाया, पण्डित से महन्त बोले कि तू इसके कितने प्रकार के पाठ जानता है ? पण्डित ने कहा कि एक प्रकार का, महन्त जो ने कहा कि तू कुछ भी नहीं जानता है। देख मैं तीन प्रकार का पाठ जानता हूं एक स्त्री गनेसाजनम स्त्री दूसगा गनेसापनम तीसगा स्त्री गनेसायनम, पंडित महन्त जी तुम्हारे पाठ में पांच दोष हैं प्रथम श, का स, ण, का न शा, का सा, य, का ज, प बोलना और विसर्जनीय का न बोलना पांच अशुद्धि हैं, महन्त जी बोले चलबे, गुरु के बड़े घर में सब शुद्ध है। पंडित चुप कर चले आये क्योंकि सब का औषध शास्त्र में कहा है परन्तु शठ मनुष्य का औषध नहीं कहा है। ऐसे हठी मनुष्य से अलग रहें जो वे सुधरा चाहें तो विद्वान उपदेश करके उनको अवश्य सुधारें ।

प्र०—जो माता पिता, आचार्य और अतिथि अधर्म करें और कराने का उपदेश करे तो मानना चाहिये वा नहीं ?

उ०—कदापि नहीं। कुमाता कुपिता सन्तानों को बुरे उपदेश करते हैं कि बेठा बिटिया तेरा विवाह शीघ्र कर देगें, किसी चीज पावें तो उठा लाना, कोई एक गाली दे तो तू उस को पचास गाली देना, लड़ाई, झगड़ा, खेल चोरी, जारी, मिथ्या

भाषण, भांग, मद्य, गांजा, चरस, अफीम, खाना, पीना आदि कर्म करने में कुछ दोष नहीं, क्योंकि अपनी कुलपरम्परा है। सुनो प्रमाणी "कुलधर्मः सनातनः" जो कुल में धर्म पहिले से चला आता है उस के करने में कुछ भी दोष नहीं। (सुसन्तान बोला) जो तुमने शीघ्र विवाह करना, किसी की चीज उठा लाना, आदि कर्म कहे वे दुष्ट मनुष्यों के काम हैं, श्रेष्ठों के नहीं, किन्तु श्रेष्ठ तो ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पढ़कर स्वयंवर अर्थात् पूर्ण युवावस्था में दोनों की प्रसन्नतापूर्वक बिवाह करना, किसी की करोडों की चीज जंगल में पड़ी देखकर कभी ग्रहण करने की मन में भी इच्छा न करना, आदि कर्म किया करते हैं जो जो तुम्हारे उत्तम कर्म और उपदेश हैं उन उन को तो हम ग्रहण करते हैं अन्य को नहीं परन्तु तुम कैसे ही हो, हमकों तन, मन, धन से तुम्हारी सेवा करना परमधर्म हैं, क्योंकि जैसी तुमने बाल्यावस्था में हमारी सेवा की है, वैसी तुम्हारी सेवा हम क्यों न करें ?(कुसन्तान बोला) श्रेठ माता, पिता, आचार्य अतिथियों से अभागिये सन्तान कहते हैं कि महकों खूब खिलाओं, पिलाओं, खेलने दो, हमारे लिये कमाया करो, जब तुम मर जाओगे, तब हम ही को सब काम करना पड़ेगा। शीघ्र विवाह करने दो, नहीं तो हम इधर उधर लीला करेंगे, बाग में जाके नाच, तमाशा करेंगे वा वैरागी हो जायगे। पढ़ने में बड़ा कष्ट होता है। हमको पढ़के क्या करना है, क्योंकि हमारी सेवा करने वाले तुम तो बने ही हो। हम सैल, सपट्टा सवारी, शिकारी, नाच, खाने, पीने, ओढ़ने, पहरने के लिए

खूब दिया करों, नहीं तो हम जब जवान होंगे तब तुम को समझ लेंगे। उत्तम माता, आदि उनसे कहते हैं कि सुनो लडको! अभी तुम्हारी पढ़ने, गुनने, सत्सङ्गति करने, अच्छी अच्छी बात सीखने, वीर्यनिग्रह और आचार्य, आदि की सेवा करने, विद्वान् होने शरीर और आत्मा को पूर्ण युवावस्था, आदि, उत्तम कर्म करने की अवस्था है। जो चूकोगे तो फिर पछताओगे। पुनः ऐसा समय तुम को मिलना अति कठिन है, क्योंकि तब तक हम घर का और तुम्हारे खाने पीने आदि का प्रबन्ध करने वाले हैं तब तक तुम सुशिक्षा ग्रहण पूर्व, सर्वोत्कृष्ट विद्या रूपी धन को संचित करो। यही अक्षय धन हैं कि जिसको चोर आदि न ले सकते, न भार होता और जितना दान करों उतना ही अधिक बढ़ता ही जाता है। इसके होने से जहां रहोगे वहां सुखी और प्रतिष्ठा पाओगे। धर्म अर्थ, काम और मोक्ष के सम्बन्धी कर्मो को जान कर सिद्ध कर सकोगे। हम जब तुमको विद्या रूप श्रेष्ठ गुणी से अलंकृत देखेंगे, तभी हमको परम सन्तोष होगा और जो तुम कोई दुष्ट काम करोगे तो हम अपना अभाग्य समझेगे, क्योकि हमारे कौन से पापों के फल से हमको दुष्ट सन्तान मिले। क्या तुम नही देखते कि जिन मनुष्यों को राज्य धन प्राप्त भी है परन्तु विद्या और उत्तम शिक्षा के बिना नष्ट-भ्रष्ट हो जावे और श्रेष्ठ विद्या सुशिक्षा से युक्त दरिद्र भी राज्य और ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। तुमको चाहिए कि जो जो उत्तम चरित्र हैं सो करो और कभी हम भी बुरे काम करें उनको कभी

मत करो, इत्यादि उत्तम उपदेश और कर्म करने और कराने हारे माता पिता आचार्यादि श्रेष्ठ करते कहाते हैं।

प्र० राजा प्रजा और इष्ट मित्र आदि के साथ कैसा-कैसा व्यवहार करें ?

उ० राजा पुरुष प्रजा के लिये सुमाता और सुपिता के समान और प्रजा पुरुष राज सम्बन्ध में सुसन्तान के सदृश वर्त कर परस्पर आनन्द बढ़ावें, मित्र, मित्र के साथ सत्य व्यवहारों के लिये आत्मा के समान प्रीति से वर्ते, परन्तु अधर्म के लिये नहीं। पड़ौसी के साथ ऐसा बर्ताव करे कि जैसा अपने शरीर के लिये करते है, वैसे ही मित्रादि के लिये भी कर्म किया करें। स्वामी सेवक के साथ ऐसा वर्ते कि जैसा अपने हस्तपादादि अंगों की रक्षा के लिये वर्तते हैं। सेवक स्वामियों के लिये ऐसे वर्ते कि जेसे अन्न जल वस्त्र और घर आदि शरीर की रक्षा के लिये होते हैं।

प्र० ब्रह्मचर्य का क्या-क्या नियम है ?

उ० कम से कम २५ वर्ष पर्यन्त पुरुष कन्या को १६ वर्ष ब्रह्मचर्य सेवन अवश्य करना चाहिए ओर अड़तालीसवे वर्ष से अधिक पुरुष और चौबीस से अधिक कन्या ब्रह्मचर्य का सेवन न करें किन्तु इसके उपरान्त गृहाश्रम का समय है।

प्र० प्रमादी बोला, पागल मनुष्य कहता है कि सुनो जी ! कन्या का पढ़ना शास्त्रोक्त नहीं, क्योंकि जब वे पढ़ जावेंगी तो

मूर्ख का अपमान कर इधर उधर पत्र भेजकर अन्य पुरुषों से प्रीति जमा के व्यभिचार किया करेगी।

उ०–सज्जनः बोला, श्रेष्ठ मनुष्य उसको उत्तर देता, सुनो जी ! तुम्हारे कहने से यह आया कि किसी पुरुष को भी न पढ़ना चाहिये, क्योंकि वह भी पढ़ कर मूर्ख स्त्री का अपमान और डाकगाड़ी चलाकर इधर उधर अन्य स्त्रियों के साथ सैल सपाटा किया करेगा।

प्र०–प्रमादी–हां, पुरुष भी न पढ़े तो अच्छी बात है क्योंकि पढ़े हुए मनुष्य चतुराई से दूसरों को धोखा देकर अपमान करके अपना मतलब सिद्ध कर लेते हैं।

उ० सज्जन–सुनाजी ! यह विद्या पढ़ने का दोप नहीं, किन्तु आप जैसे मनुष्यों के संग का दोष है और जो पढ़ना धर्म और ईश्वर की विद्या से विरुद्ध हैं सो तो प्रायः बुरे काम का कारण देखने में आता और जो पढ़ना पढ़ाना उक्त विद्या से सहित है वह तो सबके सुख और उपकार ही के लिये होता है।

जैसे लड़के लोग ब्रह्मचर्य करते हैं, वैसे कन्या लोग ब्रह्मचर्य करके वर्णोंचरण से लेकर वेदपर्यन्त शास्त्रों को पढ़कर प्रसन्न करके स्वेच्छा से पूर्ण युवावस्थावाले विद्वान पति को वेदोक्त रीति से ग्रहण करें। क्या अधर्मी से भिन्न कोई ऐसा भी मनुष्य होगा कि किसी पुरुष व स्त्री को विद्या के पढ़ने से रोक

कर मूर्ख रखा चाहे और वेदोक्त प्रमाण का अपमान करके अपना कल्याण किया चाहे।

प्र०–विद्या को किस-किस क्रम से प्राप्त हो सकता है ?

उ०—वर्णोच्चारण, व्यवहार की शुद्धि, पुरुषार्थ, धार्मिक विद्वानों का संग, विषयकथा प्रसंग का त्याग सुविचार से व्याकरण, आदि शब्द अर्थ और सम्बन्धों को यथावत् जानकर उत्तम क्रिया करके सर्वथा साक्षात् करता जाय।

प्र० बिना पढे हुए मनुष्यों की क्या गति होगी ?

उ० दो एक अच्छी और दूसरी बुरी अच्छी उस को कहते है मनुष्य विद्या पढने का सामर्थ्य तो नही रखं और वह धर्माचरण किया चाहे तो विद्धानों के संग और अपने आत्मा की पवित्रता और अविरुद्धता से धर्मात्मा अवश्य हो सकता है क्योंकि सब मनुष्यों का विद्धान होना तो सम्भव नही सब के लिए है कि जैसे अपने लिए सुख की प्राप्ति और दुःख के त्याग, मान्य होने, अपमान के न होने आदि की अभिलाषा करते हैं तो दूसरों के लिए क्यों न करनी चाहिए अर्थात् आत्मा में कुछ और वाणी में कुछ भिन्न और क्रिया में विलक्षणता करता है वह अधर्मी और जिस के जैसा आत्मा में वैसा वाणी और जैसा वाणी में वैसा ही क्रिया में आचरण है वह धर्मात्मा है जो आत्मरक्षक अर्थात् आत्मा के अनुकूल ही कहते, मानते और आचरण करते हैं वे मनुष्य विद्यारूप शुद्ध प्रकाश से युक्त होकर देव अर्थात्

विद्वान् नाम से प्रख्यात हैं। वे ही सर्वदा सुख को प्राप्त होकर मरने के पीछे भी आनन्दयुक्त देहादि पदार्थों को प्राप्त होते हैं।

प्रश्न—विद्या और अविद्या किस को कहते हैं ?

उत्तर—जिससे पदार्थ यथावत् जानकर न्याययुक्त कर्म किये जायें वह विद्या और जिससे किसी पदार्थ का यथावत् ज्ञान न होकर अन्यायरूप कर्म किये जायें वह अविद्या कहाती है।

प्रश्न—न्याय और अन्याय किस को कहते हैं ?

उत्तर—जो पक्षपात रहित सत्याचरण करता प्र वह न्याय और जो पक्षपात से मिथ्याचरण करना है वह अन्याय कहाता ।

प्रश्न—धर्म किस को कहते हैं ?

उत्तर—जो न्यायाचरण सब के हित का करना आदि कर्म हैं उनको धर्म और अन्यायाचरण सब के अहित के काम करने हैं उनको अधर्म जानो।

महामूर्ख का लक्षण

एक प्रियादास का चेला भगवानदास अपने गुरु से बारह र्ष पयन्त पढ़ा। एक दिन उनसे पूछा कि महाराज ! मुझ को ंस्कृत बोलना नहीं आया। गुरु बोले सुन बे ! पढ़ने पढ़ाने से ंद्या नहीं आती, किन्तु गुरु की कृपा से आजाती है। जब गुरु वा से प्रसन्न होता है तब जैसे कुंजियों से ताला खोलकर

मकान के सब पदार्थ झट देखने में आते हैं, वे ऐसी युक्ती बतला देते है कि हृदय के कपाट खुल जाकर सब पदार्थ विद्या तत्क्षण आ जाती है सुन ! संस्कृत बालने की तो सहज युक्ति है। (भगवानदास) महारज जी वह क्या है ? (गुरु संसार में जितने शब्द संस्कृत वा देशी भाषा में हो उन पर एक एक बिन्दु धरने से सब शुद्ध संस्कृत हो जाते हैं। अच्छा तो महाराज जी! लोटा, जल, रोटी, दाल, शाक, अर्द आदि शब्दों पर बिन्दु धर के कैसे संस्कृत हो जाते हैं। देखो लोंटां,जलें, रोंटीं दालें, शांकं चेला बोला, वाह वाह ! गुरु के विना क्षणमात्र में पूरी विद्या कौन बतला सकता है ? भगवानदास ने अपने आसन पर जाकर विचार के यह श्लोक बनाया–"वांयं आंजां नंमं स्कंत्यं"

जब उसने प्रातःकाल उठकर हर्षित होके गुरु के पास जा कर श्लोक सुनाया तब तो प्रियदासजी बहुत प्रसन्न हुए कि जो चेले हों तो तेरे ही समान, गुरु हों मेरे जैसे।

प्र०–विद्या पढ़ते समय वा पढ़ के किसी दूसरे को पढ़ावें वा नहीं ?

उ०–बराबर पढ़ाता जाय। क्योंकि पढ़ाने में विद्या की वृद्धि अधिक होती है।

प्र०–क्षुद्रबुद्धिरुवाच–सभी विद्वान् हो जावेंगे तो हमको कौन पूछेंगे ? और आप ही आप सब पुस्तकों को बांच कर अर्थ

समझलेंगे, पूजापाठ में भी न बुलावेंगे। विशेष विघ्न धनाढ्य और राजओं के पढ़ाने में है, क्योंकि उनसे हम लोगों की बड़ी जीविका होती है। जब किसी शुद्र ने उनके पास पढ़ने की इच्छा से जाके कहा कि मुझको आप कुछ पढ़ाईये तो (अल्पबुद्धि) तू कौन है? क्या काम करता? और तेरे घर में क्या व्यवहार होना है।

उत्तर–मैं तो महाराज आप का दास शूद्र हूँ, कुछ जमींदारी, खेतीवाड़ी भी होती और घर में कुछ लेन-देन का भी व्यवहार है। (नष्टमति) छी छी छी तुझको सुनने और हमको सुनाने का भी अधिकार नहीं है। जो तू अपना धर्म छोड़कर हमारा धर्म करेगा, तो क्या नरक में न पड़ेगा! हां, तुझको वेदों से भिन्न ग्रन्थों की कथा सुनने का तो अधिकार है। जब तेरी सुनने की इच्छा हो, तब हमको बुला लेना, सुना देंगे परन्तु आप से आप मत वांच लेना। नहीं तो अधर्मी हो जावेगा। जो कुछ भेंट पूजा लाया हो सो धर के चला जा, और सुन, हमारे वचन को मान ले, नहीं तो तेरी मुक्ति कभी नहीं होगी। खूब कमा और हमारी सेवा किया कर। इसी में तेरा कल्याण और तुझ पर ईश्वर प्रसन्न होगा। (दास) महाराज मुझको तो पढ़ने की बहुत इच्छा है। क्या विद्या पढना बुरी चीज है कि दोष लगजाय? बकवृति-बस बस तुझ को किसी ने बहका दिया है जो हमारे सामने उत्तर प्रत्युतर करता है। हाय क्या करें? कलियुग आ गया. विद्या को पढ़ कर हमारा उपदेश नहीं मानते बिगड़ गये। (दास)

क्या महाराज ! हमारे ही ऊपर कलियुग ने चढाई कर दी कि जो हम ही को पढ़न और मुक्ति से रोकता है, (स्वार्थी) हां हां, जो सत्युग होता तो तू हमारे सामने ऐसा बर-बर कर सकता (दास) अच्छा तो महाराज आप जो नहीं पढते तो हम को जो कोई पढ़ायेगां उसके चेले हो जावेंगे। (अधिकारी) सुन-सुन कलियुग में और क्या होना है ? (दास) आपकी हम सेवा करे उसके बदले आप हमको क्या देगें ? (मार्जारलिंगी) आशीर्वाद (दास) उस आशीर्वाद से क्या होगा ? (धूतं) तुम्हारा कल्याण (दास) जब आप हमारा कल्याण चाहते हैं तो क्या विद्या के पढ़ने से अकल्याण होता है ? (पोप उवाच) अब क्या तू हम से शास्त्रार्थ करता है ?

प्रश्न–जो विद्या पढ़ा हो और उसमें धार्मिकता न हो तो उसको विद्या का फल होगा वा नहीं ?

उत्तर–कभी नहीं, क्योंकि विद्या का यही फल है कि जो मनुष्य को धार्मिक होना अवश्य है, जिसने विद्या के प्रकाश से अच्छा जानकर न किया और बुरा जानकर न छोड़ा तो क्या वह चोर के समान नहीं है ? क्योंकि जैसे चोर भी चोरी को बुरी जानता हुआ करता और साहूकारी को अच्छी जान के भी नहीं करता वैसा ही जो पढ़ के भी अधर्म को नहीं छोड़ता और धर्म को नहीं करने हारा मनुष्य है ।

प्रश्न–जब कोई मनुष्य मन से बुरा जानता परन्तु किसी विशेष भय आदि निमितों से नहीं छोड़ सकता और अच्छे काम

को नहीं कर सकता, तब भय भी क्या उसको दोष वा गुण होता है अथवा नहीं ?

उत्तर–दोष ही होता है, क्योंकि जो उसने अधर्म कर लिया उसका फल अवश्य होगा और जानकर भी धर्म को न किया उसको सुखरूप फल कुछ भी नहीं होगा, जैसे कोई मनुष्य कुए में गिरना बुरा जानके भी गिरे, क्या उसको दुःख न होगा और अच्छे मार्ग में चलना जानकर भी न चले, उसको सुख कभी होगा ?

प्रश्न–पुरुषार्थ किस को कहते और उसके कितने भेद है ?

उत्तर–उद्योग का नाम पुरुषार्थ और उसके चार भेद हैं। एक अप्राप्त की इच्छा, दूसरा–प्राप्त की यथावत् रक्षा, तीसरी–रक्षित की वृद्धि और चौथा बढ़ाये हुए पदार्थों का धर्म में खर्च करना पुरुषार्थ के भेद हैं। जो-जो न्याय धर्म से युक्त क्रिया से अप्राप्त पदार्थों की अभिलाषा करके उद्योग करना उसी प्रकार उसकी सब ओर से रक्षा करनी कि वह पदार्थ किसी प्रकार से नष्ट भ्रष्ट न हो जाय, उसको धर्मयुक्त व्यवहार से बढ़ाते जाना और बढ़े हुए पदार्थों को उत्तम व्यवहारों में खर्च करना ये चार भेद हैं।

प्रश्न–किस-किस प्रकार से किस-किस व्यवहार में तन, मन, धन लगाना चाहिये ?

उत्तर–निम्नलिखित चारों में–विद्या की वृद्धि, परोपकार अनाथो का पालन और अपने सम्बन्धियों की रक्षा, विद्या के

लिये शरीर का आरोग्य और उससे यथायोग्य क्रिया करनी, मन से क्षत्यन्त विचार करना कराना और धन से अपने सन्तम और अन्य मनुष्यों को विद्यादान करना कराना चाहिये, परोपकार के लिये शरीर और मन से अत्यन्त उद्योग और धन से नाना प्रकार के व्यवहार तथा कारखाने खडे करने की जिन में अनेक मुख्य कर्म करके अपना-अपना जीदन सुख से किया करे अनाथ उनको कहते हैं कि जिन का सामर्थ्य अपने पालन करने का भी न हो जैसे कि बालक, वृद्ध, रोगी, अंगभंग आदि हैं। उनको भी तन, मन, धन लगा कर सुखी रख के जिस-जिस से जो काम बन सके उस उस के वह वह कार्य सिद्ध कराना चाहिये कि जिससे कोई आलसी होके नष्ट बुद्धि न हो और अपने सन्तान आदि मनुष्यों के खान-पान अथवा विद्या की प्राप्ति के लिये जितना तन, मन, धन लगाया जाय उतना थोड़ा है। परन्तु किसी को निकम्मा कभी न रहना और न रखना चाहिये ?

प्रश्न—विवाह करके स्त्री पुरुष आपस में कैसे-कैसे बर्ते ?

उत्तर—कभी कोई किसी का अप्रियाचरण अर्थात् जिस जिस व्यवहार से एक दूसरे को कष्ट होवें सो काम न करें, जैसे कि व्यभिचार आदि एक दूसरे को देखकर प्रसन्न हों, एक दूसरे की सेवा करें।

प्रश्न—ऐसा न करें तो क्या बिगाड़ है ?

उत्तर–सर्वस्वनाश, क्योंकि परस्पर प्रीति के बिना न गृहाश्रम का किञ्चित सुख, न उत्तम सन्तान और न प्रतिष्ठा वा लक्ष्मी आदि श्रेष्ठ पदार्थों की प्राप्ति कभी होती है, सुनो मनुजी क्या कहते हैं—

"जिस कुल में स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री आनन्दित रहती है उसी में निश्चित कल्याण स्थित रहता है" क्योंकि जितना सुख, विद्या और उत्तम प्रजा की हानि बाल्यावस्था में विवाह से होती है उतना ही सुख लाभ ब्रह्मचर्य से शरीर और आत्मा की पूर्ण युवावस्था में परस्पर प्रीति से स्वयंवर विवाह करके सन्तानों को उत्पन्न करते हैं उनके सन्तान भी ऐसे योग्य होते हैं कि लाखों में एक ही होते हैं कि जिन में बुद्धि, बल, पराक्रम, धर्म और सुशीलतादि शुभ गुण पूर्ण होके महाभाग्य शाली कहा कर अपने कुल को अतिप्रशंसित कर देते हैं।

प्रश्न–मनुष्यपन किस को कहते हैं ?

उत्तर–इस मनुष्य जाति में एक ऐसा गुण है कि वैसा किसी दूसरी जाति में नहीं पाया जाता।

प्रश्न–वह कौन सा है ?

उत्तर–जितने मनुष्य से भिन्न जातिस्थ प्राणी हैं उनमें दो प्रकार का स्वभाव है, बलवान से डरना, निर्बल को डराना और पीड़ा कर अर्थात् दूसरे का प्राण तक निकाल के अपना मतलब

साध लेना देखने में आता है। जो मनुष्य ऐसा ही स्वभाव रखता है उसको भी इन्हीं जातियों में गिनना उचित है, परन्तु जो निर्बलों पर दया उनका उपकार और निर्बलों को पीड़ा देने वाले अधर्मी बलवानों से किञ्चित मात्र भी भय शंका न करके इनको पर पीड़ा से हटा के निर्बलों की रक्षा तन मन और धन से सदा करना है वही मनुष्य जाति का निजगुण है, क्योंकि जो बुरे कामों के करने में भय और सत्य कामों में किञ्चित भी भय शंका नहीं करते वे ही मनुष्य धन्यवाद के पात्र कहाते हैं।

प्रश्न–क्यों जी ! सर्वथा सत्य से तो कोई व्यवहार सिद्ध नहीं हो सकता, देखो, व्यापार में सत्य बात कह दे तो किसी पदार्थ का विक्रय न हो। हार जीत के व्यवहारों में मिथ्या साक्षी न खड़ा करें तो हार जाय इत्यादि हेतुओ से सब ठिकानों में सत्यभाषणादि कैसे कर सकते हैं।

उत्तर–यह बात महामूर्खता की है वैसे जो मनुष्य महा मूर्ख हैं वे ऐसा समझते हैं कि सत्य से व्यवहार का नाश और झूठ से ही व्यवहार की सिद्धि होती है जो सब व्यवहारों में झूठ को छोड़कर सत्य ही कहते है उनको लाभ ही लाभ होते हैं हानि कभी नहीं, क्योंकि सत्य व्यवार करने का नाम धर्म और विपरीत का अधर्म है।

दृष्टान्त—एक किसी अधर्मी मनुष्य ने किसी अधर्मी बजाज की दुकान पर जाकर कहा कि यह वस्त्र कितने आने

गज देगा ? वह बोला कि सोलह आने, तुम भी कुछ कहो, बजाज और ग्राहक दोनों जानते ही थे कि यह दस आने गज का कपड़ा है परन्तु अधर्मी झूठ बोलने में कभी नहीं डरते, (ग्राहक) छः आने गज दो और सच सच लेने देने की बात करो। (बजाज) अच्छा तो तुम को दो आने छोड़ देते हैं चौदह आने दो (ग्राहक) है तो टोटा परन्तु सात आने ले लो। बजाज, अच्छा तो सच सच कहू 'ग्राहक' हां 'बजाज' चलो एक आना टोटा ही सही तेरह आने दो तुमको लेना हो तो लो 'ग्राहक' मैं सत्य कहता हू कि इसका आठ आने से अधिक कोई भी नही देगा। 'बजाज' तुम को लेना हो तो लो न लेना हो तो मत लो परमेश्वर की सौगन्ध बारह आने गज तो मुझको पड़ा भला मनुष्य जानकर मैं दे देता हू 'ग्राहक' धर्म की सौगन्ध मैं सच कहता हूं तुझको देना हो तो दे, पीछे पछतावेगा मैं तो दूसरी दूकान से [illegible] आने गज दे दो नही मैं तो जाता हूं। बजाज, तुमने कभी ऐसा खरीदा भी है नव आने गज लाओं मैं सौ रुपये का लेता हूं 'ग्राहक' धीरे-धीरे चला कि मुझ को यह बुलाता है वा नहीं जब न लौटा तब बोला सुनो इधर आओ। 'ग्राहक' क्या कहते हो नव आने पर दोगे ? 'बजाज' ए लो धर्म से कहता हूं कि ग्यारह आने भी दोगे 'ग्राहक' साढ़े नव आने लो कह कर कुछ आगे चला बजाज ने समझा कि हाथ से गया, अजी इधर आओ आओ। 'ग्राहक' क्यों तुम देर लगाते हो व्यर्थ काल जाता है

'बजाज' मेरे बेटे की सौंगन्ध तुम इसको न लोगे तो पछताओगे अब मैं सत्य ही कहता हूं साढ़े दस आने दे दो नहीं तो तुम्हारी राजी। 'ग्राहक' मेरी सौंगन्ध तुमने दो आने अधिक लिये हैं अच्छा दस आने देता हू इतने का तो नहीं। 'बजाज' अच्छा सवा दस आने भी दोगे। 'ग्राहक' नहीं नही, बजाज, अच्छा आओ बैठो, कै गज लोगे। ग्राहक—सवा गज, बजाज—अजी कुछ अधिक लो। ग्राहक—अच्छा नमूना ले जाते हैं अब तुम्हारी दुकान देख ली फिर कभी आवेगें तो बहुत लेंगे। बजाज ने नाप ने में कुछ सरकाया। ग्राहक—अजी देखे तो तुमने कैसा नापा? बजाज—क्या विश्वास नहीं करते हो, हम साहूकार हैं व ठट्ठा है, हम कभी झूठ कहते और करते हैं? ग्राहक—हांजी, तुम बड़े सच्चे हो। एक रुपया कहकर दस आने तक आये, छः आना घट गये, अनेक सौंगन्दें खाई। बजाज—वाह जी वह तुम भी बड़े सच्चे हो, छः आने कहकर दस आने कहकर दस आने तक देने को तैयार हो अनेक सौंगन्दें खा-खा कर आये सौदा झूठ के बिना कभी नहीं हो सकता। ग्राहक—तू तो बड़ा झूठा है। बजाज क्या तू नहीं? क्योंकि एक गज कपड़े के लिये कोई भी भला मनुष्य इतना झगड़ा करता है। ग्राहक—तू झूठा तेरी सात पीढी भी झूठी। ग्राहक—ने ले जूता एक मार दिया, बजाज ने गज चट मारा। अड़ोसी पड़ोसी दुकानदारों ने जैसे तैसे छुड़ाया। बजाज चल चल जा। तेरे जैसे लाखों देखे हैं। अड़ोसी-पड़ोसी, अजी झूठ के बिना कभी सौदा भी होता है। जाओ जी तुम अपनी दुकान पर बैठो और जाओ तुम अपने घर को। बजाज यह बड़ी

दुष्ट मनुष्य है। ग्राहक–अबे मुख सम्भाल के बोल। बजाज— तू क्या कर लेगा ? ग्राहक–जो मैंने किया सो तेने देख लिया और कुछ देखना हो तो दिखला दूं। बजाज–क्या तू गज से न पिटा जायेगा ? फिर दोनों लड़ने को दौड़े। जैसे तैसे लोगों ने अलग-अलग कर दिये। ऐसे ही सर्वत्र झूठे लोगों की दुर्दशा होती है। धार्मिकों का दृष्टान्त-ग्राहक इस दुशाले का क्या मूल्य है ? बजाज पांच सौ रुपये। ग्राहक–अच्छा लीजिए। बजाज लो दुशाला। सच्चे दुकान वाले के पास कोई झूठा ग्राहक गया। इस दुशाले का क्या लोगे। बजाज, अढ़ाई सौ रुपये। ग्राहक दो सौ लो। सेठ जाओ यहां तुम्हारे लिये सौदा नहीं, ग्राहक दो सौ लो। साहूकार–यहां झूठ का व्यवहार नहीं है बहुत मत बोलो लेना हो तो लो, नहीं चले जाओ। ग्राहक–दूसरी बहुत दुकानों में माल देख मूल्य कर के फिर वहीं आकर अढ़ाई सौ रुपये देकर दुशाला ले गया। सच्चा ग्राहक झूठे दुकानदार के पास जाकर बोला कि इस पीताम्बर का क्या लोगे। बजाज पच्चीस रुपये। ग्राहक–बारह रुपये का है। देना हो तो दो कहकर चलने लगा। बजाज–अभी अठारह दो। ग्राहक– नह बजाज चौदह दो, ग्राहक–नहीं, बजाज, तेहर दो, ग्राहक–नहीं बजाज–सवा बारह दो, ग्राहक नहीं,बजाज–अच्छा बारह का ही ले आओ, ग्राहक–लाओ, लो रुपये, ऐसे धार्मिकों को सदा लाभ ही लाभ होता है और झूठों की दुर्दशा होकर दिवाले ही निकल जाते हैं, इसलिये सब मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि

सर्वथा झूठ को छोड़कर सत्य ही से सब व्यवहार करें जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होकर सदा आनन्द में रहें।

प्रश्न—मनुष्य का आत्मा सदा धर्म और अधर्मयुक्त किस किस कर्म से होता है।

उत्तर—जब तक मनुष्य सर्वान्तर्यामी, सर्वद्रष्टा, सर्व व्यापक, सर्वकर्मों के साक्षी परमात्मा से नहीं डरते अर्थात् कोई कोई कर्म ऐसा नहीं है जिस को वह न जानता हो।

दृष्टान्त—जैसे एक धार्मिक विद्वान् के पास पढ़ने के लिए दो विद्यार्थियों ने आके कहा कि आप हमको पढ़ाइये (विद्वान्) अच्छा हम तुम को पढ़ावेंगे परन्तु हम कहें सो एक काम तुम दोनों जने कर लाओ। इस एक एक लड़के को एकान्त में लेजा के जहां कोई भी न देखता हो वहां इस का कान पकड़ कर दो बार बार शीघ्र-शीघ्र उठा-बैठा के धीरे से एक चपेटिका मार देना, दोनों को ले चले, एक ने तो चारों ओर देखा कि वहां कोई नहीं देखता। उक्त काम करके झट चला आया। दूसरा पण्डित के वचन के अभिप्राय को विचारने लगा कि मुझको लड़का और लड़के को भी देखता ही हूँ फिर वह काम कैसे कर सकता हूँ? पण्डित के पास आया तब जो आया था उससे पण्डित ने पूछा कि जो हमने कहा था सो कर आया? उसने कहा हां, दूसरे को पूछा कि तू भी कर आया वा नहीं? उसने

कहा नहीं क्योंकि आपने मुझ को ऐसा कहा था कि जहां कोई न देखता हो वहां यह काम करना सो ऐसा स्थान मुझ को कहीं भी नहीं मिल सकता, प्रथम तो मैं इस लड़के को और लड़का मुझको देखता ही था, पण्डित ने कहा कि तू बुद्धिमान् और धार्मिक है। मुझ से पढ़, दूसरे से कह कि तू पढ़ने के योग्य नहीं है यहां से चला जा। वैसे ही क्या कोई भी स्थान वा कर्म है कि जिस को आत्मा और परमात्मा न देखता हो, जो मनुष्य इस प्रकार आत्मा और परमात्मा की साक्षी से अनुकूल कर्म करते हैं वे ही धर्मात्मा कहाते हैं।

प्र०–सब मनुष्यों को विद्वान का धर्मात्मा होने का सम्भव है वा नहीं ?

उ०–विद्वान होने का तो सम्भव नहीं परन्तु जो धर्मात्मा हुआ चाहे तः सभी हो सकते है। अविद्वान लोग दूसरों को धर्म में निश्चय नहीं करा सकते और विद्वान लोग धार्मिक होकर अनेक मनुष्यों को भी धार्मिक कर सकते हैं और कोई धूर्त मनुष्य अविद्वान को बहका के अधर्म प्रवृत कर सकता है परन्तु विद्वान को अधर्म में कभी नहीं चला सकता। क्योंकि जैसे देखता हुआ मनुष्य कुष्ट में कभी नहीं गिरता परन्तु अंधे को तो गिरने का सम्भव है वैसे विद्वान सत्यासत्य को जान के उसमें निश्चित रह सकते और अविद्वान ठीक-ठीक स्थिर नहीं रह सकते हैं।

दृष्टान्त—एक कोई अविद्वान राजा था। उसके राज्य में किसी ग्राम में कोई मुर्ख भिक्षुक ब्राह्मण था। उसकी स्त्री ने

कहा कि आज कल भोजन भी नहीं मिलता। बहुत कष्ट है। तुम पहिले दानाध्यक्ष के पास जाना, वह राजा के पास ले जाके कुछ जप अनुठान लगवा देगा। उसने वैसा ही किया। जब उसने दानाध्यक्ष के पास जाके अपना हाल कहा कि आप मेरी कुछ जीविका करा दीजिये। (दानाध्यक्ष) मुझ को क्या देगा ? अर्थी जो तम कहो। (दानानाध्यक्ष) अर्द्धमर्द्ध 'स्वाहा"...? महाराज मैं नहीं समझा, तुम ने क्या कहा ? (दानाध्यक्ष) जो तू आधा हमको दे और आधा तू ले तो तेरी जीविका लगादें। (स्वार्थी) जैसे तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो। अच्छा चल राजा के पास, (स्वार्थी) चलो, खुशादमियों से सभा भरी थी वहां दोनों पहुँचे दानाध्यक्ष ने कहा कि यह ब्राह्मण है इस की कुछ जीविका कर दीजिये यह आपका जप, अनुष्ठान किदा करेगा। (राजा) अच्छा जो आप कहें (दानाध्यक्ष) दस रुपये मासिक होने चाहियें (राजा) बहुत अच्छा। (दानाध्यक्ष) छः महीने का प्रथम मिलना चाहिये, (राजा) अच्छा कोशाध्यक्ष ! इसको छः महीने का जोड़ कर दे दो। (कोशाध्यक्ष) जो आज्ञा। जब स्वार्थी रुपये लेने को गया, तब कोशाध्यक्ष बोले मुझको क्या देगा। (स्वार्थी) आप भी एक दो ले लीजिए। कोशाध्यक्ष छी-२ दस से कम हम नहीं लेंगे नहीं तो आज रुपये न मिलेंगे फिर आना जब तक दानाध्यक्ष ने एक नौकर भेज दिया कि उसको हमारे पास ले आओ तब तक कोशाध्यक्ष जी ने भी दस रुपये उड़ा लिये पचास रुपये लेकर चला। मार्ग में, (नौकर) कुछ मुझको भी दे ।

(स्वार्थी) अच्छा भाई तू भी एक रुपैया ले ले, (नौकर) लाओ, जब दरवाजे पर आया तब सिपाहियों ने रोका कौन ! तुम क्या लेने जाते हो ? (नौकर) मैं दानाध्यक्ष का नौकर हू (सिपाही) यह कौन है, (नौकर) जपानुष्ठानी, (सिपाही) कुछ मिला, (नौकर) यही जाने, कहो भाई क्या मिला, (स्वार्थी) जितना तुम लोगों से बचकर घर पहुँचे सो ही मिला, (सिपाही) हमको भी कुछ देता जा, (स्वार्थी) लो ॥) आठ आने (सिपाही) लाओ, जब तक दानाध्यक्ष घबराया कि वह भाग तो नही गया, दूसरे नौकर से बोले कि देखो वह कहां गया, तब तक वह स्वार्थी आदि आ पहुँचे। (दानाध्यक्ष) लाओ, रुपये कहां है, (स्वार्थी) ये हैं अडतालीस, (दानाध्यक्ष) वाह वाह बारह रुपये कहा गये, स्वार्थी ने जैसा हुआ था वसा कह दिया। (दानाध्यक्ष) अच्छा तो चार मेरे गये और आठ तेरे, (स्वार्थी) अच्छा जेसी आपकी इच्छा हो, तब छब्बीस लिये दानाध्यक्ष ने। और बाईस स्वार्थी ने लेके कहा कि मैं घर हो आऊं कल आजाऊंगा। वह दूसरे दिन आया, उससे दानाध्यक्ष ने कहा कि तू गंगाजी पर जाकर राजा का जप कर और ले यह धोती, अंगोछा, पंचपाव, माला और गोमुखी, वह लेके गङ्गा पर गया, वहां स्नान कर माला लेके जप करने बैठा, बिचारा कि जो दानाध्यक्ष ने कहा था वही मन्त्र है ऐसा व मूर्ख समझ गया। "सरप माला खटक मन का मैं राजा का जप करूं, मैं राजा का जप करूं, मैं राजा का जप करूं" जपने लगा, तब किसी दूसरे मूर्ख ने विचारा कि जब

उसका लग गया है तो मेरा भी लग जायेगा चलो, वह गया, वैसा ही हुआ, चलते समय दानाध्यक्ष बोले कि तू जा जैसा वह करता है वैसा करना। वह गया। वैसे ही आसन पर बैठकर पढने वाले का मन्त्र सुनकर जपने लगा कि "तू करे सो मैं करूं" वैसे ही तीसरा कोई धूर्त जाके सब कुछ कर करा लाया। चलते समय दानाध्यक्ष ने कहा कि जब तक निर्वाह होता दीखे तब तक करना। वह भी इसी अभिप्राय को मन्त्र समझ के वहां जा कर जप करने को बैठ के जपने लगा कि "ऐसा निभेगा कब तक, ऐसा निभेगा कब तक" वैसे ही चौथा कोई मूर्ख सब प्रबन्ध कर कराके गङ्गा पर जाने लगा तब दानाध्यक्ष ने कहा कि जब तक निभे तब तक निर्वाह करना वह भी इसको मन्त्र ही समझ कर गङ्गा पर जाके जप करने को बैठ के उन तीनों का मन्त्र सुना तो एक कहता है "मैं राजा का जप करूं, मैं राजा का जप करूं, मैं राजा का जप करूं"। दूसरा "तू करे सो मैं करूं तू करे सो मैं करूं"। तीसरा "ऐसा निभेगा कब तक, ऐसा निभेगा कब तक, ऐसा निभेगा कब तक"। और चौथा जपने लगा कि "जब तक निभे तब तक, जब तक निभे तब तक"। ध्यान रखो सब अधर्मी और स्वार्थी लोगों की लीला ऐसी ही हुआ करती है कि अपने मतलब के लिये अनेक अन्याय रूप कर्म करके अन्य मनुष्यों को ठग लेते हैं। अभाग्य है ऐसे मनुष्यों का कि जिनके आत्मा अविद्या और अधर्म्मान्धकार में गिर के कदापि भी सुख को प्राप्त नहीं होते। यहां किसी एक धार्मिक

राजा का दृष्टान्त सुनो—कोई एक विद्वान् धर्मात्मा राजा था उसके दानाध्यक्ष के पास किसी धूर्त ने जाकर कहा कि मेरी जीविका करा दो (दानाध्यक्ष) तुमने कौन-कौन शास्त्र पढ़ा और क्या-क्या काम करते हो (अर्थी) मैं कुछ भी न पढ़ा और बीस वर्ष तक खेलता कूदता गाय भैंस चराता खेतों में डोलता और माता पिता के सामने आनन्द करता था अब सब घर का बोझ पड गया है आपके पास आया हूं कुछ करा दीजिए। (दानाध्यक्ष) नौकरी चाकरी करो तो करा देंगे (अर्थी) मैं ब्राह्मण साधु जहां वहां बाजारों में उपदेश करने वाला हूं मुझ से ऐसा परिश्रम कहां बन सकता है (दानाध्यक्ष) तू विद्या के बिना ब्राह्मण, परोपकार के बिना साधु और विज्ञान के बिना उपदेशक का काम कैसे कर सकता होगा, इसलिये नौकरी चाकरी करना हो तो कर नहीं तो चला जा वह मूर्ख वहां से निराश हो चला कि यहां मेरी दाल नही गलेगी चलो राजा से कहें। जब राजा के पास जा के वैसे ही कहा तब राजा ने वैसा ही जवाब दिया कि जैसा दानाध्यक्ष जी ने कहा है वैसा करना हो तो कर नहीं तो चला जा। वह वहां से चला गया। इसके पश्चात् एक योग्य विद्वान् ने आके दानाध्यक्ष से मिलके बातचीत की तो दानाध्यक्ष ने समझ लिया कि यह बहुत अच्छा सुपात्र विद्वान् है जाके राजा से मिलके कहा कि पण्डित जी से आप भी कुछ बात चीत कीजिए। वैसा ही किया, तब राजा ने परीक्षा करके जाना कि यह अति श्रेष्ठ विद्वान् है ऐसा जानकर उन से कहा

कि आपको हजार रुपये मासिक मिलेगा आप सदा हमारी पाठ-शाला में विद्यार्थियों को पढ़ाया और धर्म्मोपदेश किया कीजिए। वैसा ही हुआ। धन्य ऐसे राजा और दानाध्यक्षादि हैं जिनके हृदय में विद्या परमात्मा और धर्मरूप सूर्य प्रकाशित होता है ॥

प्र० राजा किसको कहते हैं ?

उ० जो विद्या न्याय, जितेन्द्रियता, शौर्य, धैर्य आदि गुणों से युक्त होकर अपने पुत्र के समान प्रजा के पालन में श्रेष्ठों की की यथायोग्य रक्षा और दुष्टों को दण्ड देकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति से युक्त होकर, अपनी प्रजा को करा कर आनन्दित रहता और सब को सुख से युक्त करता है वह राजा कहाता है ॥

प्र० प्रजा किसको कहते हैं ?

उ० जैसे पुत्रादि तन, मन, धन से अपने माता पितादि की सेवा करके उनको सर्वदा प्रसन्न रखते हैं वैसे प्रजा अनेक प्रकार के धर्मयुक्त व्यवहारों से पदार्थों को सिद्ध कर के राजसभा को कर देकर उनको प्रसन्न रक्खे वह प्रजा कहाती है और जो अपना हित और प्रजा का अहित चाहे वह प्रजा भी नहीं है किन्तु उनको एक दूसरे का शत्रु डाकू चोर समझाना चाहिए क्योंकि दोनों धार्मिक होके एक दूसरे का हित करने में नित्य प्रवर्त्तमान हों तभी उनकी राजा और प्रजा संज्ञा होती है विप-रीत का नहीं। जैसे :—

अन्धेरनगरी गवर्गण्ड राजा। टकेसेर भाजी टकेसेर खाजा॥

एक बड़ा धार्मिक विद्वान् सभाध्यक्ष राजा यथावत् राजनीति से युक्त होकर प्रजापालनादि उचित समय में ठीक ठीक करता था। उसकी नगरी का नाम "प्रकाशवती" राजा का नाम "धर्मपाल" व्यवस्था का नाम 'यथायोग्य करने हारी' था वह तो मर गया पश्चात् उसका लड़का जो महा अधर्मी मूर्ख था उस ने गद्दी पर बैठ के सभा से कहा जो मेरी आज्ञा माने वह मेरे पास रहे और जो न माने वह यहां से निकल जाये, तब बड़े-बड़े धार्मिक सभासद् बोले कि जैसे आप के पिता सभा की सम्मति के अनुकूल वर्त्तते थे, वैसे आप को भी वर्त्तना चाहिये (राजा) उन का काम उनके साथ गया अब मेरी जैसी इच्छा होगी वैसा करूंगा। (सभा) जो आप सभा का कहना न करेंगे तो राज्य का नाश हो जावेगा। (राजा, मेरा तो जब होगा तब होगा परन्तु तुम यहां से जाओ नहीं तो तुम्हारा नाश तो मैं अभी कर दूंगा। सभासदों ने कहा "विनाशकाले विपरीत बुद्धिः"। जिसका शीघ्र नाश होता है उसकी बुद्धि पहिले से ही विपरीत हो जाती है। चलिये यहां अपना निर्वाह न होगा। वे चले गये और महामूर्ख धूर्त खुशामदी लोगों की मण्डली उसके साथ हो गई। राजा ने कहा कि आज से मेरा नाम 'गवर्गण्ड' नगरी का नाम 'अन्धेर' और जो मेरे पिता और सभा करतीं थीं उस से सब काम मैं उलटा ही करूंगा। जैसे मेरे पिता और सभासद् रात में सोते और दिन में राज्य कार्य करते थे। वैसे ही

उस से विपरीत हम लोग दिन के सोवें और रात में राज्य कार्य करेंगे। उन के सामने उनके राज्य में सब चीज अपने-अपने भाव बिकती थी हमारे राज्य में केशर कस्तूरी से ले के मिट्टी पर्यन्त सब चीज एक टके सेर बिकेगी। जब ऐसी प्रसिद्धि देश देशान्तरों में हुई किसी स्थान में दो गुरु शिष्य वैरागी अखाड़ों में मल्ल विद्या करते पांच-पांच सेर खाते और बड़े मोटे थे। चेले ने गुरु से कहा कि चलिये अन्धेर नगरी में वहां दश १० टकों से दश १० सेर मलाई आदि माल चाव के खूब तैयार होंगे। गुरु ने कहा कि वहां गर्वगण्ड के राज्य में कभी न जाना चाहिये क्यों कि किसी दिन खाया पिया सब निकल जायेगा किन्तु प्राण भी बचना कठिन होगा फिर जब चेले ने हठ किया तब गुरु भी मोह से साथ चला गया। वहां जाके अन्धेर नगरी के समीप बगीचे में निवास किया और खूब माल चाबते और कुश्ती किया करते थे। इतने में कभी एक आधीरात में किसी साहूकार का नौकर एक हजार रुपये की थैली ले के किसी साहूकार की दुकान पर जमा करने को जाता था। बीच में उचक्के आकर रुपये की थैली छीनकर भागे उसने जब पुकारा तब थाने के सिपाहियों ने आकर पूछा कि क्या है? उसने कहा कि अभी उचक्के मुझ से रुपयों को छीनकर ले जाते हैं सिपाही धीरे-धीरे चल के किसी भले आदमी को पकड़ लाये कि तू ही चोर है उसने उनसे कहा कि मैं फलाने साहूकार का नौकर हूं चलो पूछ लो। सिपाही हम नहीं पूछते चल राजा के पास, पकड़ कर राजा के

पास ले जा के कहा कि इसने हजार रुपये की थैली चरो ली है गर्वगण्ड और आसपास वालों में से किसो ने कुछ भी न पूछा न गछा वह विचारा पुकारता ही रहा कि मैं उस साहूकार का नौकर हूँ परन्तु किसी ने न सुना, झट हुक्म चढ़ा दिया कि इस को शूली पर चढ़ा दो। शूली लोहे की बरछो और सरों के वृक्ष के समान अणीदार होती है उस पर मनुष्य को चढ़ा उलटा कर नाभी में उसकी अणी लगा देने से पार निकल जाने पर वह कुछ विलम्ब में मर जाता है। गर्वगण्ड के नौकर भी उस के सदृश क्यों न हों क्योंकि "समानव्यसनेषुमैत्री जिनका स्वभाव एक सा होता है उन्हीं की परस्पर मित्रता भो होती है जैसे धर्मात्माओं की धर्मात्माओं, पण्डितों की पण्डितों, दुष्टों और व्यवभिचारों की व्यवभिचारियों के साथ मित्रता होती है न कभी धर्मात्मादि का अधर्मात्मादि और न अधर्मात्माओं का धर्मात्माओं के साथ हो सकता है गर्वगण्ड के सिपाहियों ने विचारा कि शूली तो मोटी और मनुष्य है दुबला अब क्या करना चाहिये! तब राजा के पास जाके सब बात कहीं उस पर गर्वगण्ड ने हुक्म दिया कि अच्छा तो इस को छोड़ दो और जो कोई शूली के सदृश मोटा हो उसको पकड़ के इस के बदले चढ़ा दो। तब गर्वगण्ड के सिपाहियों ने विचारा कि शूली के सदृश खोजो तब किसी ने कहा कि इस शूली के सदृश तो बगीची वाले गुरु चेला दोनों वैरागी ही हैं सब बोले कि ठीक-ठीक तो उसका चेला ही है। जब बहुत से सिपाहियों ने बगीचे में जाके उसके चेले से कहा कि तुझ को महाराज का हुक्म है शूली पर चढ़ने के लिये चल।

तब तो वह घबडा के बोला कि हमने तो कोई अपराध नही किया। (सिपाही) अपराध तो नही किया परन्तु तू ही शूली के समतुल्य है हम क्या करें (साधु) क्या दूसरा कोई नही है सिपाही नहीं बहुत बर-बर मत कर चल महाराज का हुक्म है तब चेला गुरु' से बोला कि महाराज अब क्या करना चाहिये। (गुरु) हमने तुझ से प्रथम ही कहा था कि अन्धेर नगरी गवर्णण्ड के राज्य मे मुफ्त के माल चाबने को मत चलो तूने नही माना। अब हम क्या करे जैसा हो वैसा भोग, देख अब सब खाया पीया निकल जावेगा। (चेला) अब किसी प्रकार बचाओ तो यहां से दूसरे राज्य में चले जावे (गुरु) एक युक्ति है बचने की सो करो तो सम्भव है कि शूली पर चढते समय तू मुझको हटा मै तुझ को हटाऊ इस प्रकार परस्पर लडने से कुछ बचन का उपाय निकल आवेगा। (चेला) अच्छा तो चलियें, सब बात दूसरे देश की भाषा मे की इससे सिपाही कुछ भी न समझे। सिपाहियों ने कहा चलो देर मत लगाओ नही तो बाध के ले जायेगे साधुओ ने कहा कि हम प्रसन्नता पूर्वक चलते है तुम क्यों बांधों। (सिपाही) अच्छा तो चलो जब शूली के पास पहुँचे तब दोनो लंगोट बांध के मिट्टी लगा के खूब लड़ने लगे। गुरु ने कहा शूली पर मै चढूंगा। (चेला) चेला का धर्म नही कि मेरे होते गुरु शूली पर चढे। (गुरु) मेरा भी धर्म नही कि मेरे सामने चेला शूली पर चढ जाय, हां मुझ को मार कर पीछे भले ही शूली पर चढ़ जाना क्यों बकता है चुप रह समय चला जाता है ऐसा कह कर शूली पर चढ़ने लगा तब चेले ने गुरु को पकड़ कर

धक्का देकर अलग किया आप चढ़ने लगा फिर गुरु ने भी वैसा ही किया तब तो गवर्गण्ड के सिपाही कामदार सब तमाशा देखते थे उन्होंने कहा कि तुम शूली पर चढ़ने के लिये क्यों लड़ते हो तब दोनों साधु बोले कि हम से इस बात को मत पूछो चढ़ने दो क्योंकि हम को ऐसा समय मिलना दुर्लभ है यह बात तो यहां ऐसे ही होती रही और गवगण्ड के पास खुशामदियों की सभा भरी हुई थी आप वहां से उठ और भोजन करके सिहासन पर बैठ कर सबसे बोला कि बैंगन का शाक अत्युत्तम होता है सुनकर खुशामदी लोग बोले कि धन्य है महाराज की बुद्धि को बैंगन का शाक चाखते ही शीघ्र उसकी परीक्षा करली। सुनिये महाराज! जब बैंगन अच्छा है तभी तो परमेश्वर ने उसके ऊपर मुकुट चारों ओर कलगी ऊपर का वर्ण घनश्याम भीतर का वर्ण मक्खन के समान बनाया है ऐसा सुनकर गवर्गण्ड और सब सभा के लोग अति प्रसन्न होकर हंसे। तब गवर्गण्ड अपने महलों में सोने को गया डोढ़ी बन्द हुई तब खुशामदी लोगों ने चौकी पहरेवालों से कहा कि जब तक प्रातःकाल हम न आवें तब तक किसी का मिलाप महाराज के साथ मत होने देना उसने कहा कि अच्छा आज के दिन कुछ गहरी प्राप्ति नहीं हुई। खुशामदी आज न हुई कल हो जायेगी हमारा और तुम्हारा तो साझा ही है जो कुछ खजाने और प्रजा से निकाल कर अपने घर में पहुँचे वही अपना है जब राजा को नशा और रंडोबाजी आदि खेल

में सब लोग मिलकर लगा देंगे तभी अपना गहरा होगा, खजाना अपना ही है और सब आपस में मिले रहो फूटना नहीं न चाहिए सब ने कहा, हां जी हां यही ठोक है । वे तो चले गये जब गवगंण्ड सोने गया तब गर्म मसाले पड़े हुए बैंगन के शाक ने गर्मी की और जङ्गल की हाजत हुई ले लोटा आजरू में गया रात भर खूब जूलाब लगा रात्रि में कोई तीस दस्त हुए रात्रि भर नींद न आई बड़ा व्याकुल रहा उसी ममय वैद्यों को बुलाया वे गवगंण्ड के सदृश ही थे ऊटपटांग औषधियां दी उसने और भी बिगाड़ किया, क्योंकि गवगंण्ड के पास बुद्धिमान क्योंकर ठहर सकते हैं । जब प्रातःकाल हुआ तब खुशामदियों की मण्डली ने सभा का स्थान घेर के दासियों से पूछा कि महाराज क्या करते हैं (दासी) आज रात भर जुलाब लगा व्याकुल रहे । (खुशामदी) क्या कोई रात्रि को महाराज के पास आया भी था (दासी) दस बारह जने आये आये थे । (खुशामदी) कौन-कौन आये थे उन के नाम भी जानती हो । (दासी) हां तीन के नाम जानती हूँ अन्य के नहीं तब तो खुशामदी लोग विचारने लगे कि किसी ने अपनी निन्दा तो न कर दी हो इसलिये आज हम में से एक दो पुरुषों को रात में भी डौढी में अवश्य रहना चाहिये सब ने कहा बहुत ठीक है इतने में जब आठ बजे के समय मुखंमलीन गवगंण्ड आकर गद्दी पर बैठा तब खुशामदियों ने भी उससे सौ गुणा मुख बिगाड़ कर शोकाकृति मुख होकर ऊपर से झूठमूठ अपनी चेष्टा जनाई । (गवगंण्ड) बैगन का शाक खाने में तो

स्वादु होता है परन्तु वादी करता है उस से हम को बहुत दस्त लगने से रात्रि भर दुःख हुआ। (खुशामदी) वाह जी वाह महाराज ! आपके सदृश न कोई राजा हुआ, न होगा और न कोई इस समय है, क्योंकि महाराज ने खाते समय तो उसके गुण की परीक्षा की और रात्रि भर में दोष भी जान लिये। देखिये महाराज ! जब बैंगन दुष्ट है तभी तो परमेश्वर ने उस के ऊपर खूंटी, चारों ओर कांटे लगा दिये। ऊपर का वर्ण कोयलो के समान और भीतर का रंग कोढ़ी की चकड़ी के सदृश किया है। (गवर्गण्ड) क्यों जी ! कल रात को तो तुमने इसकी प्रशंसा में मुकुट आदि का अलङ्कार और इस समय उन्हीं की निन्दा में खूंटी आदि की उपमा देते हो ? अब हम किस को सच्ची माने ? (खुशामदी) घबरा के बोले कि धन्य धन्य धन्य है आप की विशाल बुद्धि को ! क्योकि कल सन्ध्या की बात अब तक नहीं भूले। सुनिये महाराज ! हम को साले बैंगन से क्या लेना देना था, हम को तो आपकी प्रसन्नता में प्रसन्नता और अप्रसन्नता में अप्रसन्नता है। जो आप रात को दिन और दिन को रात, सत्य को झूठ वा झूठ को सत्य कहें सो सभी ठीक है। (गवर्गण्ड) हां-हां नौकरों का यही धर्म है कि स्वामी को किसी बात में प्रत्युत्तर न दे किन्तु हां जी हां जी करते जायं। (खुशामदी) ठीक है, राजाओं का यहीं धर्म है कि किसी बात की चिन्ता कभी न करें, रात दिन अपने सुख में मगन रहें, नौकर चाकरों पर सदा विश्वास करके सब काम उनके अधीन

रक्खें, बनिये वक्काल के समान हिसाब किताब कभी न देखें, जो कुछ सुपेद का काला और काले का सुपेद करें सो ही ठीक रक्खें, जिस दरख्त को लगावें उसको कभी न काटें, जिस को ग्रहण किया उसको कभी न छोड़ें चाहे कितना ही अपराध करें क्योंकि जब राजा होके भी किसी काम पर ध्यान देकर आप अपने आत्मा, मन और शरीर से परिश्रम किया तो जानो उस का कर्म फुट गया और जब हिसाब आदि में दृष्टि की तो वह महादरिद्र है, राजा नहीं। (गवर्गण्ड) क्योंजी! कोई मेरे तुल्य राजा और तुम्हारे सदृश सभासद् कभी हुए होंगे वा नहीं? (खुशामदी) नहीं नहीं कदापि नहीं, न हुआ न होगा और न है। (गवर्गण्ड) सत्य है, क्या ईश्वर भी हम से अधिक उत्तम होगा? (खुशामदी) कभी नहीं हो सकता, क्योंकि उसको किसने देखा है, आप तो साक्षात् परमेश्वर हैं क्योंकि आप की कृपा से दरिद्र का धनाढय, अयोग्य का योग्य और अकृपा से धनाडय का दरिद्र, योग्य से अयोग्य तत्काल ही हो सकता है। इतने में नियत किये प्रातःकाल को सायंकाल मानकर सोने को सब गये। जब सायंकाल हुआ तब फिर सभा लगी। इतने में सिपाहियों ने आकर साधुओं के झगड़े की बात कही। सुनकर गवर्गण्ड ने सभासहित वहां जा के साधुओं से पूछा कि तुम शूली पर चढ़ने के लिये क्यों सुख मानते हो? (साधु) तुम हमसे मत पूछो, चढ़ने दो, समय चला जाता है। ऐसा समय हमको बड़े भाग्य से मिलता। (गवर्गण्ड) इस समय में शूली पर चढ़ने से क्या

फल होगा ? (साधु) हम नहीं कहते, जो चढ़ेगा वह देख लेगा, हम को चढ़ने दो। (गवर्गण्ड) नहीं नहीं जो फल होता हो सो कहो, सिपाहियों! इन को इधर पकड़ लाओ। पकड़ लाये। (साधु) हमको क्यों नहीं चढ़ने देते ? झगड़ा क्यों करते हो ? (गवर्गण्ड) जब तक तुम इसका फल न कहोगे तब तक हम कभी न चढ़ने देंगे (साधु) दूसरे को कहने की बात नहीं है परन्तु तुम हठ करते हो तो सुनो! जो कोई मनुष्य इस समय में शूली पर चढ़कर प्राण छोड़ देगा वह चतुर्भुज होकर विमान में बैठ के आनन्दरूप स्वर्ग को प्राप्त होगा। (गवर्गण्ड) अहो ऐसी बात है तो मैं ही चढ़ता हूं, तुमको न चढ़ने दूंगा। ऐसा कह कर झट आप ही शूली पर चढ़ कर प्राण छोड़ दिये। साधु अपने आसन पर आए। चेले ने कहा कि हमाराज चलिये, यहां अब रहना न चाहिये। गुरु ने कहा कि अब कुछ चिन्ता नहीं, जो पाप की जड़ गवर्गण्ड था वह मर गया। अब धर्मराज्य होगा, क्या चिन्ता है, यहीं रहो। उसी समय उसका छोटा भाई बड़ा विद्वान् पिता के सदृश धार्मिक और जो उसके पिता के समान धार्मिक सभासद् और प्रजा में सत्पुरुष जोकि उसके पिता के मरने के पश्चात् गवर्गण्ड ने निकाल दिये थे वे सब आके सुनीत नामक छोटे भाई को राज्याधिकारी करके उस मुरदे को शूली पर से उतार के जला दिया और खुशामदियों की मण्डली को अत्युग्र दण्ड दे के कुछ कैद कर दिये और बहुतों को नौका में बैठा कर किसी समुद्र के बीच निर्जन द्वीपान्तर में बन्दीखाने में डालकर अत्युत्तम विद्वान्

धार्मिकों की सम्मति से श्रेष्ठों का पालन, दुष्टों का ताड़न, विद्या, विज्ञान और सत्य धर्म की वृद्धि आदि उत्तम कर्म करके पुरुषार्थ से यथायोग्य राज्य की व्यवस्था चलाने लगे और पुनः नगरी का प्रकाशवती नाम प्रकाश हुआ और उचित समय पर सब उत्तम काम होने लगे। जब जिस देशस्थ प्राणियों का अभाग्य उदय होता है तब गवर्गण्ड के सदृश स्वार्थी अधर्मी प्रजा का विनाश करने हारे राजा धनढय और खुशामदियों की सभा और उनके समान अधर्मी उपद्रवी राजविद्रोही प्रजा भी होती है और जब जिस देशस्थ प्राणियों का सौभाग्य उदय होने वाला होता है तब सुनीत के समान धार्मिक विद्वान् पुत्रवत् प्रजा का पालन करने वाली राजसहित सभा और धार्मिक पुरुषार्थी पिता के समान राजप्रबन्ध में प्रीतियुक्त मङ्गलकारिणी प्रजा होती है। जहां अभाग्योदय वहां विपरीत बुद्धि मनुष्य परस्परद्रोहादिस्वरूप धर्म से विपरीत दुःख के ही काम करते जाते हैं और जहां सौभाग्योदय वहां परस्पर उपकार, प्रीति, विद्या, सत्य धर्म आदि उत्तम कार्य अधर्म से अलग होकर करते रहते हैं। वे सदा आनन्द को प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य विद्या कम भी जानता हो परन्तु पूर्वोक्त दुष्ट व्यवाहरों को छोड़ कर धार्मिक होके खाने पीने बोलने सुनने बैठने उठने लेने देने आदि व्यवहारों सत्य से युक्त यथायोग्य करता है वह कहीं कभी दुःख को नहीं प्राप्त होता और जो सम्पूर्ण विद्या पढ़के पूर्वोक्त उत्तम व्यवहारों को छोड़ के दुष्ट कर्मो को करता है वह कहीं सुख को प्राप्त नहीं हो सकता इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि आप अपने लड़के लडकी इष्ट मित्र अड़ोसी पड़ोसी और स्वामी भृत्य आदि को विद्या और सुशिक्षा से युक्त करके सर्वदा आनन्द करते रहें।

□